अहिंसक क्रान्ति का पाक्षिक मुख-पत्र

सर्वोदय जगत

वर्ष-39, संयुक्तांक-20-21, 01-30 जून, 2016

मेरे नवयुवक मित्रो!
तुम्हारा मार्ग प्रशस्त हो!

सम्पूर्ण क्रांति का मेरा स्वप्न जमीन पर उतारना युवा शक्ति के ही हाथ में है। मैं तो वह दिन देखने के लिए नहीं रहूँगा पर, समाज का अंतिम व्यक्ति जब इज्जत के साथ जीवन जी सकेगा, अपनी क्षमता भर मेहनत कर सकेगा और अपनी आवश्यकता भर पा सकेगा, तब मुझे संतोष होगा। करोड़ों की आबादीवाले इस देश में इस काम के लिए क्या कुछ हजार भाई-बहन भी ऐसे नहीं निकलेंगे जो इतने निःस्वार्थ, इतने साहसी और दूरदर्शी हों कि अपने आपको इस ऐतिहासिक आंदोलन में खपा दें?

इन बातों पर अमल करना आसान नहीं होगा। अमल करने के लिए बलिदान करना होगा, कष्ट सहना होगा, गाली और लाठियों का सामना करना होगा, जेलों को भरना होगा। वह समय आ गया है जब हमें कुर्बानी के लिए खड़ा होना होगा। यह बड़ा कठिन काम है परन्तु आपकी सफलता निश्चित है, क्योंकि यह युगधर्म की पुकार है। कालचक्र घूमता ही रहता है। रात चाहे कितनी ही अंधेरी हो, प्रभात फूटकर ही रहता है। कुर्बानियाँ कभी बेकार नहीं जा सकतीं।

यह क्रांति है मित्रो और सम्पूर्ण क्रांति है।

यह लड़ाई लम्बी है। दूर जाना है .....दूर जाना है।

जयप्रकाश नारायण

सर्व सेवा संघ
(अखिल भारत सर्वोदय मंडल)
द्वारा प्रकाशित

अहिंसक क्रान्ति का पाक्षिक मुख-पत्र
सर्वोदय जगत
सत्य, अहिंसा एवं सर्वोदय-सम्पूर्ण क्रांति का संदेश वाहक

वर्ष : 39, संयुक्तांक : 20-21, 01-30 जून, 2016

संपादक
बिमल कुमार
मो. : 9235772595

कार्यकारी संपादक
डॉ.योगेन्द्र यादव

संपादक मंडल
डॉ. रामजी सिंह भवानी शंकर 'कुसुम'

संपादकीय कार्यालय
सर्व सेवा संघ, साधना केन्द्र
राजघाट, वाराणसी-221001 (उ.प्र.)
फोन : 0542-2440-385/223
ईमेल : sarvodayajagat@gmail.com
Website : sssprakashan.com

शुल्क

मूल्य	:	पाँच रुपये
वार्षिक	:	100 रुपये
आजीवन	:	1000 रुपये

खाता संख्या : 383502010004310
IFSC No. UBIN-0538353
Union Bank of India

विज्ञापन दर
पूरा पृष्ठ : 2000 रुपये
आधा पृष्ठ : 1000 रुपये
चौथाई पृष्ठ : 500 रुपये

1. संपादकीय... 2
2. अभिनव क्रांति के लिए तीसरी शक्ति 3
3. लोकतंत्र की रक्षा का आह्वान 7
4. जे.पी. की प्रेरणास्रोत–प्रभावतीजी 12
5. जनता का माँग-पत्र 15
6. बहुआयामी परिवर्तन है सम्पूर्ण क्रांति 17
7. जे.पी. और सम्पूर्ण क्रांति 18
8. सम्पूर्ण क्रांति का प्रथम और अंतिम चरण 19
9. सम्पूर्ण क्रांति दिवस पर अध्यक्ष... 21
10. क्रांति की खोज-यात्रा 22
11. कौन पूरा करेगा सम्पूर्ण क्रांति का... 24
12. रामधीरज भाई से बातचीत 25
13. समग्र क्रांति के लिए... 28
14. आंवला के औषधीय गुण 29
15. धर्मान्धता व भोगवाद... 30
16. सम्पूर्ण क्रांति का संदेश 31
17. निमंत्रण 32

सम्पादकीय

हो जाये एक और सम्पूर्ण क्रांति

आज फिर देश चौरस्ते पर किंकर्तव्यविमूढ़ खड़ा है, उसे किस दिशा में जाना है, समझ नहीं पा रहा है। ऐसी ही स्थिति 1974 के आस-पास भी निर्मित हो गयी थी। तब विनोबा भावे के अनन्य शिष्य जयप्रकाश ने सम्पूर्ण क्रांति के माध्यम से देश को दिशा दी थी। जनता तो पहले से ही तैयार बैठी थी, जैसे ही उसे एक सच्चा और निःस्वार्थी नेतृत्वकर्ता दिखा, सभी उसके साथ हो लिये। उनके एक आह्वान पर अपना सबकुछ छोड़छाड़ कर चल दिये। पटना की रैली में उपस्थित जनसमुदाय को संबोधित करते हुए जेपी ने पहली बार सम्पूर्ण क्रांति शब्द का प्रयोग किया। वह बहुत अच्छी तरह से जानते थे कि यदि भारत का पूरा परिदृश्य बदलना है, तो सिर्फ राजनीति और राजनेताओं के खिलाफ आंदोलन करने से आंशिक बदलाव ही होगा, जबकि उन्हें तो सड़ चुकी पूरी व्यवस्था को उखाड़ फेंकना है। उन्होंने देश की जनता से एक साथ सातों क्षेत्रों में बदलाव करने को कहा। इसी कारण सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, वैचारिक, शैक्षिक और आध्यात्मिक क्षेत्र में एक साथ क्रांतियाँ हुईं। हर तरफ से प्रहार होने के कारण तत्कालीन प्रधानमंत्री घबरा उठीं और देश में आपातकाल घोषित कर दिया। सभी आन्दोलनकारियों को ढूँढ-ढूँढ कर जेल में ठूस दिया गया। घोर यातनाएँ दी गयीं। जयप्रकाश को खाने में जहर देकर मारने की कोशिश हुई। इन सबके बावजूद भी आन्दोलनकारियों का आत्मबल नहीं टूटा। आज भी एक वैसी ही क्रांति की जरूरत महसूस की जा रही है। देश की जनता उसके लिए तैयार बैठी है। बस उसे एक जयप्रकाश चाहिए, जिसके आह्वान पर वह निकल पड़े। इस समय देश की जनता को यह भ्रम हो गया है कि उसकी सभी समस्याओं की जड़ राजनीति है। इसीलिए जब भी कुछ होता है, लोग राजनीति के खिलाफ बगावती मुद्रा में आ जाते हैं। उसके खिलाफ बिगुल फूँक देते हैं। सत्ता पलट देते हैं जिससे उन्हें आंशिक सफलता भी मिल जाती है। लेकिन थोड़े ही दिन बाद फिर सब जैसा पहले था, वैसा ही हो जाता है। यदि हम चाहते हैं, पूरी व्यवस्था बदले, तो एक बार फिर हमें सम्पूर्ण क्रांति करनी होगी। कहने का तात्पर्य यह है कि हमें राजनीति के साथ-साथ सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, वैचारिक, शैक्षणिक और आध्यात्मिक क्षेत्रों में क्रांति करनी होगी। समाज आज विमूढ हो चुका है। सारी आर्थिक नीतियाँ कॉर्पोरेट घरानों के दबाव में बनने लगी हैं। इस कारण इस देश के गरीब किसान के लिए उसमें कुछ होता ही नहीं है। संस्कृति को कलुषित करने के नित्य प्रयत्न हो रहे हैं। संस्कृति को संप्रदाय से जोड़ने का घिनौना प्रयास हो रहा है। विचार अधोगामी हो चुका है। सत्तारूढ़ दल एवं उसके अनुषांगिक संगठनों के विचार उत्तम, बाकी सब अनुपयोगी और आउटडेटेड माने जा रहे हैं। विद्यालय और विश्वविद्यालय डिग्रियाँ बाँटने की दुकानों में तब्दील हो चुके हैं। तमाम ऐसी शिक्षण संस्थाएँ हैं, जहाँ न तो शिक्षक हैं, न छात्र। बस परीक्षा के समय पहुँचिये, नकल करके परीक्षा दीजिये और प्रथम श्रेणी में पास हो जाइये। इसी कारण शिक्षा ग्रहण करने के बाद भी न तो रोजगार मिल रहा है और न ही शांति मिल रही है। ऐसी अवस्था में जो कोई आवाज उठाने की कोशिश कर रहा है। उसका दमन कर दिया जा रहा है। इसके बावजूद भी यदि वह नहीं मान रहा है, तो उसकी हत्या तक करवा दी जा रही है। जिस देश में कहा जाता था कि यहाँ का बच्चा अब पैदाइशी आध्यात्मिक होता है। उस देश के अध्यात्म का इतना पतन हो चुका है कि बच्चा अब पैदाइशी सांप्रदायिक हो गया है। देश का कोई ऐसा क्षेत्र नहीं है, निसका पतन नहीं हुआ हो, ऐसे में जेपी की याद आना स्वाभाविक है। क्योंकि देश के हर नागरिक को आज भी विश्वास है कि गांधी, विनोबा और जयप्रकाश के दिखाये रास्ते से ही अंतिम व्यक्ति का कल्याण के साथ सभी का कल्याण हो सकता है। ***–डॉ. योगेन्द्र यादव***

अभिनव क्रान्ति के लिए तीसरी शक्ति

❑ जयप्रकाश नारायण

जब कानून का रास्ता नाकाफी साबित होता है और हिंसा से किसी हल की कोई आशा नहीं रहती, ऐसी स्थिति में दूसरा रास्ता क्या हो सकता है? मुझे लगता है कि इस रास्ते की खोज के लिए हमें गांधीजी की तरफ मुड़ना होगा। आजादी के बाद गांधीजी के अनुयायियों ने जिस ढंग से देश का शासन चलाया और अधिकतर रचनात्मक कार्यकर्ता जिस तरह लकीर के फकीर बनकर चलते रहे, उसके कारण लोगों में गांधी-विचार के बारे में भ्रम उत्पन्न हो गया है और गांधीजी का मूल स्वरूप धुँधला बन गया है। आज की तरुण पीढ़ी तो गांधीजी के विचारों से अधिकतर अपरिचित ही है। किन्तु आज भी कई क्षेत्र ऐसे हैं, जिनमें हम गांधीजी से कुछ-न-कुछ सीख सकते हैं। हाँ हमें उनके द्वारा कही गयी बातों का आगे और विकास करना पड़ेगा और दुनिया की आज की परिस्थिति के साथ उसका तालमेल बैठाना पड़ेगा। किंतु उनकी बातों में ऐसे बहुत-से तत्व हैं, जो आज भी अपनी प्रासंगिकता रखते हैं।

गांधीजी हिंसा की निरर्थकता के बारे में सजग थे। इसी तरह वे लोकतांत्रिक सरकार की मर्यादाओं के बारे में भी सजग हो चुके थे। इसलिए उन्होंने राज्य-शक्ति की बराबरी से लोकशक्ति को जगाने की योजना तैयार की थी। इसके लिए उन्होंने सब कुछ छोड़कर स्वयंसेवकों के एक बड़े दल की रचना करने, उसके अगुआ के नाते फिर लोगों के बीच जाने, लोगों को शिक्षित करने, उनके मन बदलने और उन्हें संगठित करके अपने पैरों पर खड़ा कर देने की तैयारी कर ली थी। सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया में गांधीजी लोगों को ही सीधे-सीधे सक्रिय करना चाहते थे।

इसलिए जब देश को स्वराज्य मिला, तो गांधीजी ने कहा था कि हमारा काम पूरा नहीं हुआ है, बल्कि वह तो अब शुरू हुआ है। स्वराज्य के बाद सामाजिक क्रान्ति के लिए लोकशक्ति जगाने का एक सपना गांधीजी ने देखा था और वही उनकी साधना थी। ऐसी क्रान्ति के लिए सत्ता को माध्यम मानने के बदले उन्होंने सेवा, सहयोग और संघर्ष को सामाजिक परिवर्तन का साधन बनाया था। यही कारण था कि स्वराज्य मिलने के बाद गांधीजी ने खुद कोई पद स्वीकार नहीं किया, उलटे, एक संगठन और संस्था के रूप में उन्होंने कांग्रेस को भी सलाह दी कि वह अपने को विसर्जित करके स्वयं मानव-महासागर में कूद पड़े।

सारी दुनिया के इतिहास का अनोखा उदाहरण

आज गांधीजी की इस बात का मर्म हमारी समझ में भलीभाँति आ रहा है। जिस समय देश के दूसरे नेता राष्ट्र-निर्माण के लिए राज्यसत्ता पर ही भरोसा रखकर बैठे थे, उस समय गांधीजी अच्छी तरह जानते थे कि उनके सपनों का भारत अकेली एक सरकार के औजारों की मदद से नहीं गढ़ा जा सकेगा। वे राज्यसत्ता का मूल्य कम नहीं आँकते थे। ऐसी भी कोई बात नहीं थी कि सत्ता के प्रभावकारी और उचित प्रयोग में उन्हें कोई दिलचस्पी न रही हो। वे इस बात के लिए बराबर चिन्तित रहे कि शासन की बागडोर उत्तम हाथों में बनी रहे और वे हाथ सही नीति का अनुसरण करें। फिर भी उनके सामने यह बात बिल्कुल स्पष्ट बनी रही कि केवल राज्य के जरिये ही सारा बेड़ा पार नहीं लग सकेगा। इसीलिए जब देश में आजादी आयी और अपने आदर्श के अनुरूप सारे देश के नव-निर्माण का अवसर उपस्थित हुआ तो उन्होंने सत्ता अपने हाथ में नहीं ली।

उन दिनों तो इस घटना का महत्त्व मेरे ध्यान में बिलकुल ही नहीं आया, लेकिन आज मुझे लग रहा है कि सारी दुनिया के इतिहास में यह एक ही अनोखा उदाहरण है। दुनिया में बड़ी-बड़ी क्रान्तियाँ हुई हैं। जब दुनिया की ये सारी क्रान्तियाँ सफल हुईं, तो क्या हुआ? क्रान्ति का सबसे बड़ा नेता अपने देश के सबसे ऊँचे सिंहसान पर चढ़कर बैठ गया। अपनी क्रांति के उद्देश्यों को सिद्ध करने के लिए, परिवर्तन की प्रक्रिया को पूरा करने के लिए और नये समाज का निर्माण करने के लिए, उनमें से हरएक ने सत्ता अपने हाथ में थाम ली। अमेरिका में जार्ज वाशिंगटन ने यही किया। फ्रांस में एक के बाद एक नेता सत्ता अपने हाथ में लेता चला गया। रूस में लेनिन ने भी सत्ता स्वीकार की। चीन, तुर्किस्तान, अलजीरिया, क्यूबा आदि सब देशों में यही हुआ। अकेले गांधीजी ही एक ऐसे नेता निकले, जिन्होंने सत्ता अपने हाथ में नहीं ली।

गांधीजी की राजनीति लोकनीति थी

वैसे देखा जाय, तो गांधीजी कोई संन्यासी नहीं थे। वे राजनीति से भी अलग नहीं रहते थे। पचीस सालों तक उन्होंने इस देश की राजनीति को अपनी अँगुलियों पर नचाया था फिर भी जब स्वराज्य आया, तो उन्होंने सत्ता की तरफ झाँककर देखा तक नहीं। यदि वे यह मानते होते कि सत्ता में जाने से राष्ट्र का उत्थान हो सकेगा, तो उन्होंने राज्य-सत्ता अपने हाथ में ली होती। इसके लिए उन्हें कौन रोक सकता था?

लेकिन गांधीजी ने ऐसा नहीं किया। उन्होंने सारी दुनिया से अलग अपना एक

निराला ही रास्ता निकाला। न तो उन्होंने कोई पद स्वीकार किया और न वे किसी विधानसभा में या लोकसभा में ही गये। इससे यह बात तो बिलकुल स्पष्ट हो जाती है कि इस विषय में गांधीजी दूसरों की अपेक्षा कुछ अलग ही ढंग से सोचते थे। उन्हें पूरा-पक्का विश्वास था कि उनके अपने जो उद्देश्य हैं, उनकी पूर्ति सत्ता द्वारा नहीं हो सकेगी। उनके चिंतन का यह एक परिपक्व परिणाम था। सोच-समझकर ही वे इस निश्चय पर पहुँचे थे।

लेकिन चूँकि गांधीजी का सारा जीवन राजनीति में बीता था, इसलिए यह बात लोगों के ध्यान में सहसा आती नहीं थी। किन्तु यहाँ सोचने की बात यह है कि गांधीजी ने जिस राजनीति में भाग लिया था, वह राजनीति किस प्रकार की थी? उन्होंने जो आंदोलन चलाया था, वह तो देश के लिए स्वराज्य प्राप्त करने का आंदोलन था। इस सीमित अर्थ में ही वह राजनीतिक था। वरना उनकी राजनीति पक्ष की या सत्ता की वह राजनीति तो कभी रही नहीं। भारत का स्वराज्य-आंदोलन एक सर्वोत्तम लोक-आंदोलन था। वह राजनीति यानी राज्य की राजनीति नहीं थी, बल्कि लोकनीति यानी जनता की राजनीति थी। जनता की ऐसी राजनीति के लिए ही गांधीजी ने अपना सारा जीवन बिताया और अपने जीवन की अन्तिम घड़ियों में भी वे देश के सामने एक ऐसी योजना रखकर गये, जिससे जनता की राजनीति का विकास हो सके और लोकशक्ति फूलती-फलती रहे।

निराली प्रतिभा से उपजा एक अनोखा प्रस्ताव

अपनी हत्या के एक दिन पहले 29 जनवरी को गांधीजी कांग्रेस के विधान में सुधार करने के लिए एक मसविदा तैयार कर गये। उसमें उन्होंने लिखा है : ''देश को आजादी दिलाकर कांग्रेस ने एक बहुत बड़ा काम किया है। लेकिन अभी उसे बहुत-से बड़े-बड़े काम और करने हैं। देश को राजनीतिक स्वतंत्रता तो मिल गयी है, पर जनता की और विशेष रूप से गाँवों की आर्थिक, सामाजिक और नैतिक स्वतंत्रता प्राप्त करना अभी बाकी है। जैसे-जैसे भारत लोकतंत्र की दिशा में आगे बढ़ता जायेगा, वैसे-वैसे नागरिक शक्ति और सैनिक शक्ति के बीच संघर्ष की सम्भावना बनी रहेगी। इसीलिए हमें ऐसी समाज-रचना खड़ी करनी है, जिसमें सैनिक शक्ति, नागरिक शक्ति के नियंत्रण में रह सके।''

और, इसके लिए उन्होंने कौन-सा नुस्खा सुझाया? उन्होंने यह नहीं कहा कि इसके लिए विधानसभा में और लोकसभा में जाकर ऐसा संविधान बनाओ अथवा भारत सरकार की नीति ऐसे-ऐसे तरीकों से तैयार हो। उन्होंने यह भी नहीं कहा कि इसके लिए कांग्रेस को फलाँ-फलाँ काम करने पड़ेंगे। ऐसी कोई बात नहीं कही। उलटे, उन्होंने तो यह कहा कि इसके लिए आज की कांग्रेस को विसर्जित करके लोकसेवक-संघ के नाम से एक नया संगठन खड़ा करो।

ऐसी बात तो गांधीजी ही कह सकते थे। दूसरा कौन कह सकता था? उन्हीं के पास ऐसी शक्ति थी। मैं जानता हूँ कि गांधीजी का यह अनोखा प्रस्ताव उनकी अपनी निराली प्रतिभा का एक रोमांचकारी उदाहरण है।

ऐसी तो बात थी नहीं कि गांधीजी सत्ता और संगठन का महत्त्व न समझते हों। वे तो यथार्थवादी थे। फिर भी उन्होंने यह बात कही! और, ऐसे समय में कही, जब सारे देश में आग लगी हुई थी, और कोई जानता नहीं था कि देश बचेगा या नहीं बचेगा। इतनी नाजुक परिस्थितियों में भी उन्होंने अपना यह प्रस्ताव प्रस्तुत किया था! जिस कांग्रेस ने आंदोलन चला-चलाकर आजादी हासिल की, जो कांग्रेस इस देश की एकता की गारंटी-रूप थी और जिसके हाथ में उन दिनों देश की हुकूमत थी, उस कांग्रेस के लिए गांधीजी ने कहा कि उसका विसर्जन कर दिया जाय और उसके स्थान पर लोक-सेवकों का एक संघ खड़ा किया जाय!

जर्जरित और गया-गुजरा मार्ग नहीं चाहिए

गांधीजी ने ऐसा सुझाव दिया, क्योंकि वे जानते थे कि केवल सरकार की शक्ति से और राज्य की सत्ता से नये भारत का निर्माण नहीं हो सकेगा। यही कारण था कि एक बार राजनीतिक स्वतंत्रता मिल जाने के बाद, वे नहीं चाहते थे कि कांग्रेस नाम की संस्था पार्लियामेंट की एक मशीन की तरह काम करती रहे। उनकी इच्छा यह थी कि इसके बदले कांग्रेस एक नये क्रांतिकारी संगठन का रूप ले ले। अब कांग्रेस गाँव-गाँव में फैला हुआ लोकसेवक-संघ बन जाये। इस लोकसेवक-संघ को वे राष्ट्रीय स्तर पर एक नया संगठन, एक नयी सामाजिक क्रांति का वाहन बनाना चाहते थे। उनमें दूरदृष्टि थी। इसीलिए देश के नवनिर्माण की दृष्टि से उन्होंने सत्ता के परम्परागत, जर्जरित और गये-गुजरे रास्ते को अपनाने के बदले हमें एक नया रास्ता सुझाया था।

गांधीजी की यह बात हमें समझनी होगी और इस पर अमल भी करना पड़ेगा। इसके अलावा दूसरा कोई चारा नहीं है। गांधीजी के इस अंतिम संदेश को मैं तो इसी रूप में समझा हूँ। उनके साथियों ने उनकी इस बात पर बिलकुल ध्यान नहीं दिया। मुझे लगता है, गांधीजी द्वारा बताया गया मार्ग परम्परागत मार्ग से दरअसल इतना अलग था कि वह उनके लिए कोई अर्थ नहीं रखता था, न वह उनके गले उतरा था और न उनके मन में बैठ ही पाया था। क्या किसी ने कहीं यह सुना है कि कोई सफलता प्राप्त क्रांतिकारी सत्ता से अलग रहकर अपनी क्रांति के लक्ष्य को सिद्ध करने के लिए आम लोगों के अंदर सोई पड़ी आत्मशक्ति को झकझोर कर जगाने के काम में जुट गया हो?

क्रांति की शक्तियों की गहरी पकड़

क्रांति के लिए गांधीजी की प्रक्रिया लोक-शिक्षण, मत-परिवर्तन और हृदय-परिवर्तन की

प्रक्रिया थी। वे न केवल नये समाज के निर्माण में हिंसा को वर्जित करना चाहते थे, बल्कि वे तो प्राथमिक साधन के रूप में कानून का सहारा भी नहीं लेना चाहते थे। वे लोगों को समझाना, उनकी सेवा करना और उन्हें उनके पैरों पर खड़ा करना चाहते थे। उन्होंने दण्ड-शक्ति के बदले लोक-शक्ति को ही अपना आधार माना था। स्वराज्य के आंदोलन में उन्होंने अपनी इस सर्वोदय-पद्धति का सुंदर उपयोग करके दिखाया था। इस सर्वोदय पद्धति का विकास करने और समाज-परिवर्तन के काम में इसका उपयोग करने की बात उनके मन में थी।

क्रांति की जो पद्धतियाँ अब तक रही हैं, गांधीजी की यह पद्धति उनकी अपेक्षा स्पष्ट ही भिन्न है। इसके मूल में क्रांति के प्रेरक बलों के बारे में उनकी गहरी समझ रही है। गांधीजी ने देख लिया था कि यदि समाज के चारित्र्य को मानवता-मूलक बनाये रखना है, तो समाज को समानता और बंधुता को समाज को धारण करनेवाली शक्ति के रूप में स्वीकार करना पड़ेगा और समाज की यह स्वीकृति उसे समझाकर और कभी आवश्यकता पड़ जाय, तो सत्याग्रह के द्वारा प्राप्त करनी होगी। नये समाज का निर्माण नैतिक मूल्यों के आधार पर करना होगा। नये समाज का निर्माण नैतिक मूल्यों के आधार पर होना चाहिए और मनुष्य के निर्माण के बिना तो समाज का निर्माण असंभव ही है। यह भी स्पष्ट है कि भौतिकवाद मनुष्य के निर्माण का आधार नहीं बन सकता। मनुष्य का विकास मानवता की दृष्टि से होना चाहिए, इसी के साथ उसका नैतिक विकास भी होना चाहिए। विकास के आध्यात्मिक और सांस्कृतिक पहलुओं को भी ध्यान में रखा जाना चाहिए।

दुनिया का मार्गदर्शन करनेवाली, गांधीजी की खोज

गांधीजी ने स्वराज्य के अपने आंदोलन में अहिंसा का जो प्रयोग किया, उससे सारी दुनिया को मार्गदर्शन मिला। गांधीजी ने एक ऐसा रास्ता खोज निकाला, जिससे समूचे मानव-समाज को और पूरे-के-पूरे समूह को, नैतिक मूल्यों के आधार पर बदल सकने की एक रीति हाथ में आधी। यह उनकी एक बहुत जबरदस्त खोज हुई। इससे इस बात का पता चला कि हजारों साल पुराने नैतिक मूल्यों को केवल व्यक्ति के नहीं, बल्कि समूचे राष्ट्र के जीवन में भी किस तरह प्रतिष्ठित किया जा सकता है। सत्याग्रह की एक ऐसी प्रक्रिया हाथ में आयी कि जिसके कारण आम आदमी भी उसमें शामिल हो सके। कानून-भंग तो उसका एक अंग-भर था। हम साधु-संतों की जीवन-शुद्धि की बातें सुना करते थे, परंतु उसके सहारे भारत के समान विशाल देश में एक नैतिक आंदोलन कैसे खड़ा किया जा सकता है, कैसे एक क्रांति का श्रीगणेश किया जा सकता है, इसकी रीति गांधीजी ने खोज निकाली। उन्होंने कहा कि दुश्मन के लिए भी दिल में मुहब्बत रखो, दुश्मनी नहीं और हजारों-हजार ने उनकी इस बात को माना!

गांधीजी अहिंसा की इसी प्रक्रिया को आगे बढ़ाकर देश के नवनिर्माण के काम में भी इसका उपयोग करना चाहते थे। लेकिन हमने उनके लिए वैसा अवसर रहने नहीं दिया। इसलिए यह काम विनोबीजी की तरफ आया। उन्होंने सामूहिक जीवन में आध्यात्मिक मूल्यों को प्रविष्ट कराने का एक अद्‌भुत प्रयत्न किया। नैतिक मूल्यों के आधार पर देश में नवनिर्माण का काम किस तरह किया जा सकता है, इसका जवाब हमें विनोबा के कार्यक्रमों में मिलता है।

हिंसा-शक्ति और दण्ड-शक्ति का ही बोलबाला

इसलिए, सर्वोदय की और गांधी-विनोबा की विचारधारा में 'तीसरी-शक्ति' की कल्पना की गयी है। मानव-समाज के परिवर्तन, पुनर्निर्माण और धारण-पोषण के लिए अब तक सिर्फ दो शक्तियों का ही सहारा लिया गया है : हिंसा-शक्ति का और दंड-शक्ति का। मनुष्य को प्रेम की शक्ति का भी पता है, पर वह परिवार के सीमित क्षेत्र के बाहर बहुत काम करती दिखायी नहीं देती। अभी तक प्रेम, अहिंसा और करुणा की आधारशिला पर समाज की रचना कहीं हुई नहीं है। इसलिए आज तक मानव-समाज पर हिंसा-शक्ति और दण्ड-शक्ति ही राज करती है, यह दंड-शक्ति स्वयं भी छिपी हुई हिंसा-शक्ति ही है, यद्यपि लोकतंत्र में उतनी हिंसा लोक-सम्मत मानी जाती है। इसके कारण जहाँ एक ओर मानव-समाज अणु-युद्ध की सम्भावना के छोर पर खड़ा है, वहाँ दूसरी ओर मनुष्य एक अतिकेन्द्रित, अतियान्त्रिक राजनीतिक और आर्थिक संगठन के नीचे दबकर अपने व्यक्तित्व को और अपनी स्वायत्तता को खो बैठा है, फिर भले ही वह लोकतंत्र हो, एकतंत्र हो, अथवा दूसरा कोई तंत्र हो।

संक्षेप में, इस सबका सार यही निकलता है कि हिंसा-शक्ति और दण्ड-शक्ति दोनों ही मानव-समाज की मूल समस्याओं को हल करने में विफल रही हैं। किसी तीसरी शक्ति की आवश्यकता स्पष्ट ही मालूम होती है। वह तीसरी शक्ति है, प्रेम, अहिंसा और करुणा की शक्ति, जिसका उपदेश संत-महात्माओं के साथ सब धर्मों द्वारा सनातन काल से दिया जाता रहा है। ईसा मसीह, बुद्ध और महावीर ने इसका प्रतिपादन सामाजिक क्षेत्र में भी किया था।

प्रेम, अहिंसा और करुणा की तीसरी शक्ति

ईसामसीह ने प्रेम की शक्ति के विस्तार को पड़ोसी तक बढ़ाने की कल्पान की, और वैसा उपदेश भी दिया। व्यापक अर्थ में पड़ोसी को समूची मानव-जाति भी माना जा सकता है। परन्तु ईसामसीह के अनुयायियों द्वारा प्रेम-धर्म को सामाजिक जीवन में उतारने का कोई प्रयत्न किया गया हो, इसकी कोई जानकारी

हमें नहीं है। आज के ईसाई समाज के बारे में यह तो कहा नहीं जा सकता है किसी भी अर्थ में ईसामसीह के प्रेम, अहिंसा और करुणा के उपदेशों के अनुसार चल रहा है।

महावीर और युद्ध ने अहिंसा और करुणा को अपने धर्म का आधार बनाया। किन्तु यह धर्म व्यक्ति के अथवा भिक्षु-संघ के आन्तरिक जीवन तक ही सीमित रहा। दुनिया में सम्राट अशोक ही एक ऐसा राजा हुआ, जिसने बौद्ध धर्म को स्वीकार करने के बाद और कलिंग के युद्ध में हुए रक्तपात से सन्तप्त होकर आगे कभी युद्ध न करने का संकल्प किया था। लेकिन फिर भी ऐसा मालूम नहीं होता कि अशोक के समय का भारतवासी अहिंसामय अथवा करुणामय बन चुका था।

इस प्रकार प्रेम, अहिंसा और करुणा की आधारशिला पर स्थापित इन तीनों धर्मों के अनुयायी अपने-अपने समाज की रचना इस आधारशिला पर नहीं कर सके। आज हम इसी तीसरी शक्ति का प्रयोग सामाजिक क्षेत्र में करना चाहते हैं। परन्तु यहाँ सवाल यह खड़ा होता है कि व्यक्तिगत स्तर पर यह शक्ति चाहे जितनी सफल हुई हो, फिर भी सामाजिक समस्याओं को सुलझाने में यह अब तक सफल नहीं हो सकी है। ऐसी स्थिति में आज के जमाने में इसकी सफलता की क्या संभावना है? यह एक बिलकुल उचित सवाल है आज इसका पूरा-पूरा उत्तर तो किसी के पास नहीं है। फिर भी, परिस्थिति, अनुभव और विचार के आधार पर यह कहा जा सकता है कि पहले की तुलना में आज इसकी सफलता की संभावना अधिक प्रबल हुई है।

आज उसकी सफलता की अधिक संभावना है

पहली बात तो यह है कि पुराने जमाने की तुलना में आज के जमाने में आम आदमी भी अधिक जाग्रत बना है। उसकी जागृति का एक लक्षण यह है कि हिंसा-शक्ति अथवा दंड-शकित की मदद से अब तक जिस प्रकार की समाज-रचना होती रही है, या इनके द्वारा जिस तरह की राजनीतिक और आर्थिक व्यवस्था खड़ी होती रही है, उससे आज के आम आदमी को संतोष नहीं है। इसलिए आज की ऐतिहासिक परिस्थिति की यह माँग है कि इन दोनों शक्तियों से भिन्न किसी तीसरी शक्ति का सहारा लिया जाय।

दूसरी बात यह है कि भूतकाल के प्रयोगों के अनुभवों के आधार पर आज की पीढ़ी के लिए यह संभव है कि वह पहले की भूलों या गलतियों का पुनरावर्तन न होने दे। पहले के जमाने में प्रेम आदि की शक्ति ने एक बड़ा धोखा यह खाया कि उसने राज्य का आश्रय लेकर अपना प्रसार करना चाहा। परिणाम उल्टा ही निकला। प्रेम की शक्ति पर दण्ड की शक्ति, अहिंसा की शक्ति पर हिंसा की शक्ति और करुणा की शक्ति पर कानून की शक्ति सवार हो गयी और यों विनायक का बंदर बन गया। इस अनुभव से लाभ उठाकर हमें राज्य-सत्ता से अलग रहकर एक तीसरी शक्ति का विकास करना है। इसीलिए गांधीजी ने कहा था कि अहिंसा में श्रद्धा रखनेवालों को राज्य की सत्ता में नहीं जाना चाहिए। इसी बात को ध्यान में रखकर विनोबाजी ने लोकसेवकों को राजनीतिक पक्षों में शामिल न होने की सलाह दी थी और राजनीति के बदले लोकनीति की कल्पना सबके सामने रखी थी।

पिछले अनुभवों से एक ओर सबक भी सीखा जा सकता है। जहाँ पहले के प्रयोगकर्ताओं ने प्रेम आदि की शक्ति को व्यक्तिगत जीवन तक धर्म-संघों तक ही मर्यादित किया था, वहाँ हमें संकल्पपूर्वक समाज के सारे व्यवहारों में और सारी संस्थाओं में इस शक्ति को प्रतिष्ठित करना है और इसके अनुसार प्रेम पर आधारित अहिंसक समाज का निर्माण करना है।

तीसरी बात यह है कि जब हम पिछले अनुभवों को ध्यान में रखकर विचार करते हैं, तो हम इस निर्णय पर पहुँचते हैं कि यदि हमको पहले की भूलों को दोहराना न हो, तो हमें विचार-शासन को अपने सब कामों को आधार बनाना होगा और कर्त्तव्य-शक्ति का पूरा विभाजन करना पड़ेगा। हमारे लिए इसका सच्चा रास्ता यही हो सकता है कि हम लोगों को विचार समझाएँ, समझाकर उनके पूर्वग्रहों को बदलें और उनकी व्यक्तिगत और सामूहिक कर्त्तव्य-शक्ति को जगायें। इस तरह सोचने-समझने पर हमें इस बात की प्रतीति होती है कि यदि इस पद्धति से सामाजिक क्रांति के लिए प्रयत्न किये जायें, तो जहाँ पहले के प्रयोग विफल हुए थे, वहाँ नये प्रयोग सफल हो सकते हैं। फिर भी आदर्श और व्यवहार के बीच जो एक अनिवार्य अंतर रह जाता है, वह अंतर तो रहेगा ही।

चौथी बात यह है कि आज के जमाने में गांधीजी ने समाज के स्तर पर इस तीसरी शक्ति का जो व्यापक प्रयोग पहले दक्षिण अफ्रीका में और फिर भारत में किया, उसने भी हमें महत्त्वपूर्ण पाठ सिखाये हैं। ये सारे पाठ हमारे लिए नये हैं, जो पहले के प्रयोगों के समय में प्राप्त नहीं हुए थे। हाल-हाल में विनोबाजी ने भी जो व्यापक प्रयोग किये हैं, उनके कारण भी हमको कुछ ऐसे नये पाठ सीखने को मिले हैं, जिनसे आगे के प्रयोगकर्ताओं को खासी मदद मिलेगी।

अभिनव मार्ग का आविष्कार करना ही होगा

इन सब कारणों को ध्यान में रखकर मैं यह मानता हूँ कि जिस कार्य में महावीर, बुद्ध और ईसामसीह सफल नहीं हो पाये, उसमें आज हमारे समान साधारण लोग सफल हो सकेंगे। यह एक ऐसी नयी प्रक्रिया है, दुनिया को जिसका कोई अनुभव नहीं है। नये विचारों के विषय में संदेह और संकोच का होना स्वाभाविक ही है। लेकिन अगर हम विचारपूर्वक और श्रद्धापूर्वक प्रयत्न करेंगे, तो इसी तीसरी शक्ति के द्वारा सामाजिक समस्याओं के →

दस्तावेज : संकटकाल की घोषणा से पहले लोकनायक का आखिरी सार्वजनिक भाषण।

लोकतंत्र की रक्षा का आह्वान

❑ **जयप्रकाश नारायण**

25 जून 1975 को रामलीला मैदान, नयी दिल्ली में लोकनायक जयप्रकाश नारायण ने विशाल जनसभा को संबोधित किया। ठीक इसके एक दिन बाद 26 जून को पूरे देश में तात्कालीन इंदिरा सरकार ने आपातकाल की घोषणा कर दी और जेपी सहित विपक्षी व आंदोलन के सभी प्रमुख नेताओं को गिरफ्तार कर जेल में डाल दिया गया।

जब से लोकतंत्र की स्थापना हुई उसके बाद पहली बार ऐसी शंका का मौका आया है और खतरा इस बात का है कि शायद हमारा लोकतंत्र बिलकुल ही मिट जाय। देखिये, प्रचार के सब साधन शासन के हाथ में हैं। देहातों में जहाँ पढ़े-लिखे लोग कम हैं, निरक्षर लोग हैं, वहाँ भी आज रेडियो सुननेवाले लोग हैं। रेडियो इतना झूठ बोल रहा है, एकपक्षीय समाचार दे रहा है, टिप्पणियाँ कर रहा है, भाषण दिलवा रहा है, यह ठीक नहीं है। यह सारा काम जनता के रुपयों से होता है, कोई इंदिराजी के पैसों से यह काम नहीं हो रहा है, कोई कांग्रेस पार्टी के रुपयों से यह काम नहीं चलता है। यह रेडियो, इसको बंद करना चाहिए या इन नीतियों का परिवर्तन कराना चाहिए। जनता की सेवा के लिए है यह। क्या यह संभव नहीं है कि चुनौती दे दी जाय। यह पॉलिसी आप बंद कीजिये, रेडियो और टेलीविजन की, नहीं तो हम आपकी चलने नहीं देंगे। क्या यह संभव नहीं है? लोकतंत्र में अगर जनता ने अच्छी तरह से बात समझी नहीं तो लोकतंत्र कैसे चलेगा?

और मित्रो, औपचारिकता की दृष्टि से, प्रोप्राइटी की दृष्टि से और नैतिकता की दृष्टि से, मॉरल या एथिकल दृष्टि से यह आवश्यक था कि हाईकोर्ट के फैसले के बाद तुरंत ही प्रधानमंत्री अपना इस्तीफा दे देतीं। उनकी इज्जत बढ़ती; और राष्ट्रपति कहते कि आप चलाइये, जब तक कोई नयी व्यवस्था नहीं हो। फिर उनकी पार्लियामेंटरी पार्टी की बैठक होती, फिर नये लीडर चुने जाते, फिर उनका सुप्रीम कोर्ट में फैसला हो जाता। जो भी फैसला होता उसके मुताबिक—अगर फैसला यह होता कि हाईकोर्ट का फैसला गलत था, तो ठीक है, अगर प्रधानमंत्री अपना मंत्रिमंडल बनाना चाहतीं तो बना सकती थीं। लेकिन डर तो यह है कि मैं जानता हूँ—गद्दी से एक बार वे हट जायेंगी तो वह गद्दी फिर उनको मिलेगी नहीं, हालाँकि रोज प्रस्ताव पास हो रहे हैं कि इन पर हमारा अटूट विश्वास है वगैरह-वगैरह। यह भी उन्हीं के हलकों से मैं सुनता हूँ। तो प्रोप्राइटी और मॉरैलिटी इन दो बातों के आधार पर उनको चाहिए था कि वे इस्तीफा देतीं।

मैं अक्सर कहता हूँ कि कम-से-कम जो माँग जनता कर सकती है अपने प्रतिनिधि से, अपने मंत्री से, मुख्यमंत्री से, प्रधानमंत्री से भले ही जनता की रोटी न मिले, कपड़ा न मिले, काम न मिले, खाना न मिले, लेकिन जनता को यह माँगने का अधिकार है कि हमारी सेवा आप ईमानदारी से करो। भ्रष्टाचार होता है तो इसका इलाज जनता के हाथों में होना चाहिए। दुनिया के माने हुए वकील सर आयवर जैनिंग—उनका एक वाक्य अंग्रेजी में पढ़ देता हूँ। उन्होंने कहा है : सबसे प्राथमिक, जो गुण होना चाहिए वह यह होना चाहिए कि वह ऑनेस्ट हो, ईमानदार हो और ईमानदार बना रहे। उसके बाद यह भी कहा कि यह बहुत जरूरी है कि वह ऑनेस्ट रहे यह क्वालीफिकेशन तो रहे ही, मगर इतना ही जरूरी नहीं है, बल्कि लोग देखें भी, समझें भी कि वह आदमी ईमानदार है। उन्हें विश्वास भी हो उसकी ईमानदारी में। इसके अनुसार क्या प्रधानमंत्री श्रीमती गांधी किसी पद पर रह सकती हैं? बहरहाल!

अब देश का जो प्राइममिनिस्टर है, वह इतना बँधा हुआ हो एक तो हाईकोर्ट के फैसले से, उनके ऊपर भ्रष्टाचार के काले बादल छाये हुए हों, वे अभी छँटे नहीं हैं और जब तक सुप्रीम कोर्ट का आखिरी फैसला नहीं हो जायेगा तब तक वे बादल रहेंगे। इसलिए अंग्रेजी में कहते हैं कि शी इज अंडर क्लाउड। यह जो उनकी ऑनेस्टी है इनकरप्टिबिलिटी है, यह क्वेश्चंड है। हाईकोर्ट ने, आप जानते हैं, दो प्रश्नों के ऊपर तो कहा है कि करप्ट

→

हल खोजने में हम जरूर सफल होंगे। उस स्थिति में मानव-समाज का विकास सम्यक् दिशा में हो सकेगा। स्वतंत्रता की हमारी लड़ाई के लिए गांधीजी ने जिस पद्धति को अपनाया था, किसी देश ने वैसी पद्धति अब तक अपनायी नहीं थी। अतएव जिस तरह स्वतंत्रता प्राप्त करने का हमारा काम अनोखा और अभिनव रहा उसी तरह हमारी आर्थिक और सामाजिक रचना और उसे कार्यान्वित करने के हमारे साधन भी दूसरों की तुलना में भिन्न ही रहेंगे। इस प्रकार हमारी यह अभिनव सामाजिक क्रांति तीसरी शक्ति के आधार पर होगी। यह तीसरी शक्ति प्रेम, अहिंसा और करुणा की वह शक्ति है, जो हिंसा-शक्ति और दंड-शक्ति से निरपेक्ष एक स्वतंत्र लोक-शक्ति है। ❑

प्रैक्टिसेज उन्होंने इलेक्शन में अख्तियार किये। लेकिन साथ-साथ जस्टिस सिन्हा ने यह कहा है कि इंदिराजी ने लिखित बयान दिया और अभी जो जवाब दे रही हैं, यह सवाल पूछने पर जो जवाब दे रही हैं—कोई सत्ताइस जगहों में ऐसे प्रश्न आये हैं जिन पर उन्होंने यह शक किया कि जो बात वह कह रही हैं वह नेचुरल है, स्वाभाविक है या नहीं? यानी हाईकोर्ट ने उनके शब्दों के ऊपर विश्वास किया है सच बोल रही हैं या झूठ। यहाँ सभ्य भाषा का प्रयोग किया गया है। साधारण जनता की भाषा में कहा जा सकता है कि हाईकोर्ट ने यह कहा कि कई जगहों पर उन्होंने झूठ कहा है। अब प्राइममिनिस्टर के ऊपर ये जो आरोप लगाये गये हैं, सब कायम हैं। प्राइममिनिस्टर वोट नहीं कर सकती हैं तो क्या ऐसा प्राइममिनिस्टर देश का होना चाहिए? यह केवल औपचारिकता का ही प्रश्न नहीं है। यह हमारे देश के लिए, हमारे लोकतंत्र के लिए अच्छा है कि बुरा है, या सोचना चाहिए।

यह जनता को समझाने की जरूरत है। इंदिराजी जब बोलती हैं तो गरीबों की बात करती हैं और महलों की बात करती हैं, आदिवासियों की बात करती हैं। वह कहती हैं कि ये सब रिएक्शनरी लोग हैं, दक्षिणपंथी लोग हैं। ये सब लोग प्रगति के विरोधी हैं—फलतः बदलना नहीं चाहते हैं, इसी समाज को कायम रखना चाहते हैं जिसमें गैर-बराबरी है, जिसमें शोषण है, सारे अन्याय हैं। इसी समाज को कायम रखना चाहते हैं। मैं इस समाज को बदलना चाहती हूँ। यह बराबर वे कहती हैं। जनता को भ्रम में डालती हैं। यह एक पॉलिटिकल बात भी है, हमारे लिए किसी भी पार्टी के लिए, किसी भी देश के लिए ऐसा प्रधानमंत्री नहीं होना चाहिए जिसके इस प्रकार से हाथ-पैर बँधे हों, भ्रष्टाचार के दाग लगे हुए हों। अब सुप्रीम कोर्ट क्या करेगा? सुप्रीम कोर्ट के बारे में मेरे जैसा व्यक्ति कुछ कहे, यह ठीक नहीं है। लेकिन एक बात मैं जरूरी कहना चाहता हूँ कि आज से कुछ बरस पहले तक एक परंपरा बनी रही कि जो सीनियरमोस्ट जज होगा, चीफ जस्टिस हुआ करेगा। एक नियम था। अब प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी ने छोड़ दिया और कहा कि इसमें कोई सैंक्टिटी नहीं है। इस सीनियारिटी और वरीयता की बात मैं ऐसी कोई धर्म और पवित्रता की बात नहीं है कि इसके अलावा कोई बात नहीं हो सकती। तो ठीक है यह बात मान ली जाय। लेकिन कोई तो तरीका होना चाहिए। किस प्रकार देश के चीफ जस्टिस, भारत के चीफ जस्टिस की नियुक्ति हो?

आज जो कानून या स्थिति है उसमें भारत का प्रधानमंत्री ही जिसको चाहें उसको भारत का चीफ जस्टिस बना सकते हैं। लेकिन उसमें विचार करें कि क्या नियम होने चाहिए, क्या रेग्युलेशंस होना चाहिए, किनसे राय लेनी चाहिए और क्या-क्या चाहिए, इसके पहले कि राष्ट्रपति चीफ जस्टिस को नियुक्त करें। आज भी राष्ट्रपति ही नियुक्ति करते हैं, लेकिन अधिकार केवल प्रधानमंत्री को है। कोई अंकुश उनके ऊपर नहीं। अब देखिये, जब उनकी सच्चाई में, इनकी योग्यता में—चीफ जस्टिस ए.एन.रे पर अविश्वास नहीं प्रकट कर रहा हूँ, केवल एक बात कह रहा हूँ कि चूँकि प्रधानमंत्री के ये आभारी हैं, वे काफी नीचे थे। इनके ऊपर तीन जज थे। शैलट साहब होनेवाले थे। चौदह दिनों के लिए हेगड़े साहब होनेवाले थे और ग्रोवर साहब इनसे भी जूनियर थे—यानी इनसे भी सर्विस ज्यादा उनकी चीफ जस्टिस होने के ख्याल से रही थी। इन तीनों को छोड़कर इंदिराजी ने इनको रखवा लिया। एक अब्लिगेशन है प्राइममिनिस्टर का इनके ऊपर। मित्रो, लोकतंत्र में जो परंपरा है—कहीं भी आप देख लीजिए जहाँ लोकतंत्र जिंदा है—जो कांस्टीट्यूशन में लिखा है, अंग्रेजों का तो कोई लिखित कांस्टीट्यूशन नहीं है सब उनका कन्वेंशन ही है, जहाँ लिखित भी है अमेरिका में या और जगह में, वहाँ भी कन्वेंशन का बहुत बड़ा महत्त्व होता है। यह तो जस्टिस अय्यर ने भी कहा है कि भाई, यह तो बीस बरस का प्रेसीडेंट है और इसलिए उन्होंने कहा कि यह प्रिसिडेंशियल एटीट्यूड मैं अख्तियार करता हूँ कि आज एक एब्सोल्यूट स्टेऑर्डर इस कोर्ट ने कभी दिया नहीं। तो प्रेसीडेंट को इन्होंने भी माना है, कन्वेंशन को इन्होंने भी माना है और वकीलों ने हमें कितने ही उदाहरण दिये। राजेन्द्र बाबू राष्ट्रपति थे। हिंदू कोड बिल के ऊपर चाहते थे कि वे अपनी राय लिखकर सीधे पार्लियामेंट के मेंबरों के पास भेजें। उनकी सलाह दी गयी कि राष्ट्रपति को यह करना हो तो कैबिनेट की मारफत करना चाहिए और कैबिनेट अगर मंजूर करेगी कि राष्ट्रपति के विचारों को भेजा जाय, पार्लियामेंट के मेंबरों में प्रसारित किया जाय, तभी यह होगा। यह कन्वेंशन बन गया है तो मुझे मान्य है। इस प्रकार कई कन्वेंशंस हैं। कन्वेंशन जो होता है वह कोई छोटी बात नहीं होती, वह लॉ होता है, कानून होता है। जब इंदिराजी ने कानून तोड़ा इस मामले में, चीफ जस्टिस के अपांइटमेंट में और इस प्रकार ए.एन.रे साहब उनके आभारी हैं। इस हालत में उनको स्वयं यह केस अपने हाथ में नहीं लेना चाहिए। एक नागरिक की हैसियत से, भारत के हर नागरिक की तरफ से मेरी दरख्वास्त है भारत के चीफ जस्टिस से (कोई अविश्वास नहीं है उनकी योग्यता में, उनकी निष्पक्षता में, लेकिन इस प्रकार चूँकि इंदिराजी ने कई जजों को पार करके उनको चीफ जस्टिस बनाया है तो लोगों के मन में होगा कि यह तो इंदिराजी से ओब्लाइज्ड हो गये हैं, इसलिए अगर वे सही भी कहेंगे तो उन पर अविश्वास होगा। इसलिए यह उनके हित में नहीं है और न्याय के हित में नहीं है) यह मुकदमा उनको दूसरे जजों को देना चाहिए।

देश का हित ही देश की नैतिकता का आधार है लोकतंत्र में, लोकतांत्रिक जो मूल्य हैं उनकी रक्षा हो। जो लॉ है, लैटर ऑफ दि लॉ है, उससे कहीं ज्यादा महत्त्व है इन मूल्यों का, क्योंकि कोई भी लोकतंत्र नहीं चल सकता, कोई समाज नहीं चल सकता बिना सामाजिक मूल्यों के, डेमोक्रेटिक वैल्यूज के। इसके लिए कांग्रेस के लोगों से मेरी अपील है कि इस क्राइसिस के मौके पर अगर टिकट मिलेगा कि नहीं, हम रहेंगे कि नहीं कैबिनेट में—यही बात आप सोचेंगे तो आप देश के प्रतिनिधि नहीं हैं। आपको इस्तीफा देना चाहिए और जनता को इसकी माँग करनी चाहिए। इसलिए आपसे आपके हित के प्रति, एक मित्र के नाते मेरा निवेदन है कि अपनी रक्षा कीजिए, देश की रक्षा कीजिए। आज यह परिस्थिति नहीं है—गुजरात के चुनाव ने यह सिद्ध कर दिया और हाईकोर्ट के जजमेंट के बाद इंदिराजी ने जो कुछ आचरण किया है, उसकी जो प्रतिक्रिया हुई उसकी खबर है मुझको। उसके बाद अगर ये लोग समझते हैं कि हमको इंदिरा टिकट नहीं देगी तो कोई हमारे लिए रास्ता नहीं होगा। अब यह हालत नहीं है। इंदिराजी टिकट देंगी तो शायद हार जायेंगे ये लोग। इसलिए उनको जो राजनैतिक हैं, फिर से विचार करना चाहिए। सामने आकर काम किया जाय, तब उनकी जितनी प्रशंसा की जाय वह थोड़ी ही होगी।

संघर्ष की बातें भी मैं निवेदन करूँ। इंदिराजी तो कदम-ब-कदम फासिज्म की तरफ जा रही हैं। इसका जवाब क्या है? फासिज्म का एक ही जवाब है। देश का जाग्रत जनमत, देश की जनता, देश के जवान, किसान मजदूर, मध्यम वर्ग के लोग सब कहें कि हम कभी फासिज्म आने नहीं देंगे। अपने देश में, फासिस्टवाद, डिक्टेटरशिप, तानाशाही हम कबूल नहीं करेंगे, यह कोई पाकिस्तान नहीं है, यह भारत है। यह भारत की पुरानी परंपरा है। हजारों साल पहले इस देश में जनपद थे। हाल तक तो गाँव-गाँव में पंचायतें थीं। ग्रामराज करते थे। पठानों के जमाने में, मुगलों के जमाने में, पेशवाओं के जमाने में, मराठों के जमाने में, अंग्रेजों ने उनको जो तोड़ा, जानबूझकर तोड़ा, क्योंकि ये जड़ों की चीजें हैं, ग्रासरूट्स हैं। हमें ऐसा नेता मिले जिसने इन विचारों को जाग्रत किया। गांधीजी बराबर कहते थे, स्वराज का मतलब ग्रामराज, स्वराज होगा तो गाँव में, गाँववालों का राज होगा। गाँव-गाँव में ऐसा राज होगा। जनता स्वयं अपना राज चलायेगी। जो काम वह स्वयं नहीं कर सकती है उसे अपने प्रतिनिधियों को करने के लिए सौंपेगी।

यह जो हमारी डेमॉक्रेसी की परंपरा है, लोकतंत्र की परंपरा है उसके लिए खतरा है : देखिए इस प्रकार से इंदिराजी, बरुआ साहब, उनके दूसरे साथी लोग उल्टा प्रोपेगंडा करते हैं। खुद तो धीरे-धीरे फासिस्टवाद की तरफ जा रहे हैं। किस तरह से अपने देश में जो विधानसभाएँ, धारासभाएँ आदि हैं, उनकी शक्तियों को कुंठित किया जा रहा है। बिहार में आर्डिनेंस-राज चलता है, ज्यादा ऑर्डिनेंस से ही काम होता है और जगह ही आर्डिनेंस राज चला है। किस प्रकार से जजों को, कोर्ट्स को उनकी ताकत को, इस प्रकार का प्रचार करके, प्रोपेगंडा करके, लोगों के ऊपर दबाव डाल करके मन का काम करना चाहते हैं। यह सब लोकतंत्र को कमजोर करके फासिज्म की तरफ आगे बढ़ने का उपाय होता रहा है और हो रहा है। मैं नहीं समझता हूँ कि इस देश में यह संभव है कि इंदिराजी या कोई इस देश में अपनी तानाशाही कायम करें।

अब मित्रो, यह संघर्ष की बात। दो कार्यक्रम हैं। एक तो देशभर में प्रचार करना, लोगों को समझाना। मुँह से ही प्रचार करना पड़ेगा। सभाएँ करनी पड़ेंगी, हजारों या लाखों सभाएँ करनी पड़ेंगी देश भर में। समझाना पड़ेगा कि हाईकोर्ट के जजमेंट के बाद अगर इंदिराजी का इस्तीफा देना जरूरी था तो उससे आज चार गुना जरूरी है, सुप्रीम कोर्ट के जजमेंट के बाद वे इस्तीफा दें। लड़के लोग हैं, युवा लोग हैं—जाओ, देहातों में घूमो, प्रचार करो, लोगों को समझाओ। जनता की बुद्धि पर आप विश्वास करो। ऐसा मत समझो कि यह बात जनता नहीं समझेगी। जब उसी वोटर के सामने सवाल आयेगा कि वोट इनको दे या उनको दें या उसको दें तो फिर वह भ्रम में पड़ जायेगा। इसलिए 'इश्यूज' को समझना होगा। इश्यूज बिलकुल साफ है, प्रश्न बिलकुल साफ है। अब ये लोग उनको गुमराह कर रहे हैं। इनको हमें दबाना होगा। यह तो बादल फैला रहे हैं, उस धुंध को साफ करना होगा।

और दूसरा, अभी तो केवल दिल्ली में इंदिराजी के निवास के पास जितना भी नजदीक पहुँच सकें, जितने भी लोग जा सकें, दिल्ली के लोग और आस-पास के पाँच प्रदेशों के लोग—हरियाणा, पंजाब, राजस्थान, उत्तर प्रदेश और मध्यप्रदेश—इन पाँच प्रदेशों के लोग आयें यहाँ और इतनी बड़ी तादाद में रोज जाकर गिरफ्तार हों। (तालियाँ) गिरफ्तारी की बात पर आप खुश होते हैं, तालियाँ बजाते हैं, हँसते हैं। कुर्बानी के लिए तैयार होना होगा। अगर अपने देश को बढ़ाना है, अपने देश के नैतिक बल को मजबूत रखना है तो फिर आपको इसके लिए बलिदान देना होगा। कुर्बानी देनी होगी। बस भाषण हो गया, तालियाँ बजायीं और चले गये, ऐसा नहीं होगा। अब यह जो संघर्ष आ गया है इसको देशव्यापी बनाना ही है। प्रधानमंत्री सारे देश का है। लोकसभा सारे देश की है, राज्यसभा सारे देश की है। इसलिए इस देशव्यापी संघर्ष का आवाहन है। इसका पहला दौर है, प्रधानमंत्री के सामने जाकर माँग करना कि आपको यहाँ बैठने का कोई अधिकार नहीं है, आप इस्तीफा दे दीजिये, जनता की तरफ से हम माँग करने आये हैं। मतलब है, गिरफ्तार होइएगा।

पुलिस के लोगों को दमन का हुक्म मिलेगा। पुलिस की हड़ताल यहाँ हुई। अब

मैं इनको उभारने की बात नहीं कर रहा हूँ। हड़ताल हुई। खोसला कमीशन बैठा उनकी सब माँगों के बारे में, शिकायतों के और फरियादों के बारे में जाँच करने के लिए। 1968 में खोसला कमीशन की रिपोर्ट हो गयी। आज तक उसके ऊपर प्रधानमंत्री ने, सरकार ने कोई भी कार्रवाई नहीं की। मित्रो, वह समय आ रहा है जिसकी तरफ बार-बार मैंने इशारा किया। और जो मेरे ऊपर देशद्रोह का मुकदमा चलाया जायेगा तो मैंने कहा, ठीक है, चलाइये मुकदमा हमारे ऊपर देशद्रोह का।

जयप्रकाश नारायण जिस दिन देशद्रोही बनेगा, इस देश में कोई देशभक्त नहीं रह जायेगा। मित्रो, यह कोई गर्वोक्ति नहीं है। मैंने इस देश से आज तक कुछ भी नहीं माँगा। देश की सेवा ही करता रहा हूँ। वह समय आ गया है जब हमें कुर्बानी के लिए उठ खड़ा होना होगा। जिनके हाथों में बागडोर है, जो लोग लोकतंत्र के आज प्रहरी बनाये गये हैं, प्रधानमंत्री—जिनकी पार्टी का बहुमत है, जिसने शपथ ली है, और वे ही लोग लोकतंत्र को धीरे-धीरे खत्म करने की दिशा में बढ़ रहे हैं।

भारत सरकार के ये कर्मचारी हैं, उनकी माँगें थीं, उनके बारे में सरकार ने क्या किया? सेन्ट्रल और स्टेट के जो एंपलाइज हैं उनके बारे में कह रहा हूँ। कौन-सी माँगें उनकी सरकार ने पूरी कीं? जब ये लोग देशभक्ति के नाम पर, लोकतंत्र के नाम पर, कानून के नाम पर जो भी हुक्म दें उसका आप पालन कर रहे हैं या उसका अपमान कर रहे हैं? आपको अभी से यह सोचना है। सोचने के लिए मैं बराबर चेतावनी देता रहा हूँ। सेना को यह सोचना है कि हमको आदेश मिलते हैं, उन आदेशों का हमें पालन करना चाहिए कि नहीं? देश की सेना के लिए आर्मी एक्ट में लिखा हुआ है भारत में लोकतंत्र की रक्षा करने का उसका कर्त्तव्य है। लोकतंत्र की, कांस्टीट्यूशन की रक्षा करने की। डेमॉक्रेटिक कांस्टीट्यूशन की रक्षा—लिखा हुआ है उसमें। उसकी रक्षा करना, देश के झंडे की रक्षा करना, उसकी इज्जत रखना और कांस्टीट्यूशन की, जो सभी लोग जानते हैं, लोकतांत्रिक है।

इसलिए मित्रो, आप सबको सोचना चाहिए कि क्या कर्त्तव्य हैं, देश के प्रति आपकी क्या वफादारी है, किसके आप नौकर हैं, क्या कर्त्तव्य है। इंदिराजी ने कहा था मेरे जवाब में एक बार कि जयप्रकाश नारायण कहते हैं कि गैरकानूनी, इल्लिगल आर्डर्स पुलिस को नहीं मानने चाहिए। मजिस्ट्रेट आर्डर देता है तो पुलिस किताब खोलकर देखेगी कि यह आर्डर लीगल है या इल्लिगल है? मैंने अधिवक्ताओं से पूछा कि इसका क्या जवाब है? खोलकर रख दिया—पुलिस एक्ट में यह लिखा हुआ है कि पुलिस का जो आदमी या अफसर गैरकानूनी हुक्म का पालन करेगा वह लायबल होगा पनिशमेंट के, उसके ऊपर मुकदमा चल सकता है। उसको सजा दी जा सकती है। उसको फैसला करना होगा। उसको ट्रेनिंग दी जाती है। सिपाही जो है, गरीब बेचारा आज का पुलिस का सिपाही, उसको भी इतनी शिक्षा दी तो जाती है कौन से आदेश लीगल हैं और कौन-सा लॉ के खिलाफ है। गिरफ्तार किया और चंद लोगों को हिरासत में ले गये और पीटना शुरू कर दिया। यह किस कानून में लिखा है? अपराध किया, अदालत में ले जाओ, वहाँ फैसला हो। फैसला हो उसके खिलाफ तो सजा हो....पाँच बरस की, दस बरस की, फाँसी पर लटकाना है, फाँसी पर लटका दो। मीसा में रख देना हो—तो गैरकानूनी मीसा उसमें रख देना हो—रखो लेकिन मारने-पीटने का अधिकार है तुमको? कोई अधिकार नहीं है। रोज पिटाई होती है और मशहूर है पंजाब, हरियाणा, दिल्ली की पुलिस इसके लिए। बिहार की पुलिस इतनी मशहूर नहीं है आपकी तरह। ऐसा मशहूर होना नेकनामी नहीं है। यह कोई शोहरत की बात नहीं है। यह लज्जा की बात है। इस प्रकार से रोटी के टुकड़ों पर आप बिके नहीं हैं। आपने ईमान नहीं बेच दिया। ब्रह्मानंद रेड्डीजी से मैं निवेदन करता हूँ कि मैंने जान-बूझकर ये बातें कही हैं। मेरे ऊपर मुकदमा चलाइये देशद्रोह का।

एक सप्ताह का कार्यक्रम केवल सत्याग्रह का है। लेकिन आप समझते हैं कि केवल एक सप्ताह के सत्याग्रह से प्रधानमंत्री इस्तीफा देनेवाली हैं? (श्रोता–नहीं, नहीं) तब आगे आ जाना पड़ेगा। देशभर में सत्याग्रह करना पड़ेगा। डरेंगे तो याद रखियेगा और इसके लिए यह दिल्ली विश्वविद्यालय खुलनेवाला है और नेहरू विश्वविद्यालय खुलनेवाला है, तो विश्वविद्यालयों के लड़कों, याद रखो, तुमको सोचना पड़ेगा किा जाओगे अपने क्लासों में जाओगे जेलखानों में? जेलखानों में जाओगे? (श्रोता–हाँ, हाँ, जायेंगे) अच्छी बात है, देखूँगा मैं।

यह भी वक्त आ सकता है, ये लोग अगर मानेंगे नहीं, जब यह फैसला हो कि सरकार को हमने अमान्य किया है, इनका कोई नैतिक या कानूनी अधिकार, वैधानिक अधिकार नहीं है शासन करने का, इसलिए इनको हमने अमान्य किया है, इनके साथ सहयोग नहीं करेंगे, इनको एक पैसा टैक्स नहीं देंगे। यहाँ तक कहना पड़ेगा आपको और फिर उसमें कुर्की होगी, नीलामी होगी। उन सबके लिए तैयार रहना पड़ेगा। मैं यह समझता हूँ कि ये कांग्रेस पार्टी के नेता इस तरह से अपनी आँखों को बंद करके कानों में तेल डाल करके बेखबर हुए हैं कि सोचते नहीं कि दुनिया किधर जा रही है। जिस रास्ते पर वे चल रहे हैं उसी रास्ते पर चलते रहेंगे। भगवान् करे कि ऐसा हो—न यह उनके हित में होगा न देश के हित में होगा। लेकिन हो सकता है, जिस प्रकार इंदिराजी का रुख मैं देख रहा हूँ उसे देखकर लगता है कि सब हो सकता है। आपको याद दिला दूँ कि गुजरात

के लड़कों ने जब आंदोलन शुरू किया था पिछले साल जनवरी में, कौन-सी उनकी माँग थी कि जिस माँग को अमान्य किया जा सकता था, जिस माँग को गैर-मुनासिब कहा जा सकता था? लेकिन लाठियाँ चलीं। गोलियाँ चलीं। डेढ़ सौ लोग मारे गये। बिहार के लड़कों ने प्रदेश छात्र संघर्ष समिति बनाकर अपनी माँगें पेश कीं—बारह माँगें। एक भी माँग उनमें से ऐसी नहीं है जो गैर-मुनासिब हो। बातचीत हो सकती है। मगर वहाँ के मुख्यमंत्री को इतनी अक्ल नहीं थी शासन करने की। इतनी लियाकत नहीं थी कि वे लड़कों से बातचीत करते तो इंदिराजी को तो समझना चाहिए था। इन्होंने कहा कि कांग्रेस में फूट हुई किस आधार पर? ये लोग प्रगति को, प्रोग्रेस को, चेंज को, परिवर्तन को, क्रांति को, इंकलाब को रोक रहे हैं। नया समाज नहीं बनाने देना चाहते हैं। ये स्टेटस-कोइस्ट हैं, यथाशक्ति को कायम रखना चाहते हैं। और मैं बहुत आगे जाना चाहती हूँ और ये लोग हमारा रास्ता रोके हुए हैं। इसलिए मैं आगे जा नहीं रही हूँ। ये सारे उनके नारे थे। जनता ने समझा कि कहीं से देवी उतर आयी हैं। जवाहरलालजी की पुत्री हैं। अवश्य कुछ करेंगी जब इस तरह की बातें वे कह रही हैं। उसी परंपरा में ये पली हैं। अब 69 में, छोड़ दीजिये, उनका बहुमत नहीं था, 71 में इन्हीं नारों के ऊपर वह जीत कर आयी। भारत में कौन-सा परिवर्तन किया है उन्होंने? सिक्किम की बात करती हैं वह। सिक्किम में आज तो फैसला हुआ है वह पचीस वर्ष पहले होना चाहिए था। अगर जवाहरलाल चाहते तो यह आज चोग्याल साहब हैं उनके पिताजी और उस समय जो सिक्किम की कांग्रेस थी वे भी उस समय तैयार थे कि हम भारत में मिल जाना चाहते हैं। क्यों जवाहरलालजी ने उसको स्वीकार नहीं किया? इस सवाल को इतना लंबा क्यों लटकाया गया? और कई सवाल, वे कहती हैं कि हल किये। लेकिन जिस समाज को आप बदलने चली थीं उसमें क्या परिवर्तन हुआ?

चारों तरफ से आवाजें उठ रही हैं। आवाज उठानेवाले कौन लोग हैं? आप कहती हैं ये लोग प्रतिक्रियावादी हैं। जयप्रकाश नारायण हैं, उनके पीछे धनवाले, पैसेवाले, करोड़पति लोग हैं। लेकिन इस 'फेडरेशन ऑफ इंडियन चैंबर्स ऑफ कॉमर्स एंड इंडस्ट्रीज' में कौन लोग हैं? आप जानते होंगे कि जो फैडरेशन हैं, भारत में बड़े-बड़े व्यापारियों और उद्योगपतियों का, सबसे बड़ा फेडरेशन है। इस इंडियन चैंबर ऑफ कॉमर्स एंड इंडस्ट्रीज की तरफ से प्रस्ताव पास हुआ कि इंदिराजी को इस्तफा नहीं देना चाहिए। इंदिराजी में हमें विश्वास है। तो भारत का पूँजीवाद, भारत का कैपिटलिज्म आज इंदिराजी के पीछे खड़ा है, उनकी रक्षा के लिए खड़ा है गोएबल्स ने ठीक यही काम किया था। हिटलर का वह आदमी था। यह फासिस्ट है, वह फासिस्ट है और स्वयं जा रही हैं उस तरफ और धीरे-धीरे पर्दाफाश होता जा रहा है। स्पष्ट होता जा रहा है। मुझे बहुत अफसोस होता है यह कहते हुए। लेकिन अगर यह चीज उनके अंदर नहीं होती....छोड़ दीजिये। कोई शरम नहीं, कोई हया नहीं, कोई नैतिक मूल्य इनके पास नहीं, सत्ता का, पद का बड़ा लोभ है, लेकिन अगर यह चीज उनके अंदर नहीं होती—कि धीरे-धीरे लोकतंत्र को खत्म करके अपनी तानाशाही कायम करें तो आज इस्तीफा दे दिया होता।

अब मित्रो, यह लड़ाई कब तक चलेगी? क्या उनकी पैंतरेबाजी होगी? लोकसभा वे भंग कर सकती हैं? चुनाव भी जल्द हो सकता है, या अगले साल भी चुनाव हो। केवल यही नारा नहीं लगाते जाना है इंदिराजी इस्तीफा दो। साथ-साथ यह भी देखना है कि इंदिराजी और उनके वे समर्थक कांग्रेस के, जो आज कह रहे हैं कि आपके बिना देश चलेगा ही नहीं, देश जहन्नुम में, रसातल में चला जायेगा, आप पर हमारा पूरा विश्वास है। चाहे जो भी कहे, चाहे हाईकोर्ट कहे, सुप्रीम कोर्ट कहे, आपको प्रधानमंत्री बना रहना होगा तो यह भी आपके सामने प्रश्न आयेगा, बल्कि मूल प्रश्न यही है कि फिर इंदिराजी और उसकी पार्टी को वापस नहीं आना है दिल्ली के शासक की हैसियत से। पिछले नौ वर्षों से इसका शासन देख लिया। उसमें क्या परिवर्तन हुआ। कौना-सा समाज को बदला इन्होंने? बेकारी बढ़ रही है। उन्होंने उस दिन आँकड़े नहीं दिये, ऐसे ही कहा परसों किसी अपने बयाने में कि बेकारी घट रही है। यह अजीब बात है। प्रधानमंत्री को गौर-जिम्मेदारी की बात नहीं करनी चाहिए। बेकारी, अनएंप्लायमेंट बढ़ती जा रही है, ये हमारे आँकड़े हैं—यानी 33 या कितने लाख थे उससे बढ़कर अब 93 लाख हो गये हैं, यानी जो रजिस्टर्ड हैं। कहाँ से उनके पास आँकड़े आये हैं? पढ़े-लिखों की बेकारी, अनपढ़ों की बेकारी, पिछले चार बरसों में बढ़ी है। एक अच्छे अर्थशास्त्री के हिसाब के मुताबिक शायद 1971 में 57 फीसदी भारत के लोग गरीबी की रेखा के नीचे थे, हालाँकि प्लेनिंग कमीशन का कहना था कि 40 प्रतिशत होंगे। उन्होंने प्लानिंग कमीशन का कहना था कि 40 प्रतिशत होंगे। दो तिहाई भारत की जनता गरीबी की रेखा के नीचे है, और इन चार वर्षों में गरीबी हटाओ के नारे का रात-दिन नाम लेती हैं और हरिजनों को संबोधित करती हैं, आदिवासियों को संबोधित करती हैं—लज्जा नहीं आती है कि इनका राज है उत्तर प्रदेश में, इनका राज है बिहार में और हरिजनों को जिंदा जलाया गया है, हरिजनों के गाँव जला दिये गये हैं। क्या हरिजनों को इंदिराजी को कुछ कहने का अधिकार है? वे तो बेचारे कहाँ बैठे हैं? उनको ये बातें समझ नहीं आती हैं। लेकिन उनको कौन-सा अधिकार है? क्या उनके राज में हरिजनों का जीवन आश्वस्त हुआ? वह अपना माथा ऊँचा करके आज जिंदा रह सकता

है? अभी हम गये थे भोजपुर के इलाके में, जहाँ नक्सलपंथी के नाम पर हरिजनों की हत्याएँ हुईं। गोलियों से उड़ा दिये गये। जमीन के मालिक भी मारे गये हैं। एक जगह मसौढ़ी के इलाके में तो पंद्रह आदमियों को इन्होंने मार दिया नक्सलाइट कह करके।

तो मित्रो, बेकारी बढ़ी, गरीबी बढ़ी, हर तरह का भ्रष्टाचार बढ़ा, शिक्षा की बरबादी होती गयी। जीवन का कौन-सा पहलू है जिसमें बिगाड़ नहीं हुआ? सुधार कहाँ हुआ? सुधार हुआ होगा इन लोगों के जीवन में। कुछ रुपया कमाया होगा, कुछ मकान बने होंगे, कुछ महल बनाये होंगे, लेकिन जनता के जीवन में कौन-सा सुधार हुआ? क्यों इंदिराजी बराबर यह रिवोल्यूशन और क्रांति, चेंज और परिवर्तन हो ऐसा कहती हैं? और हम लोग जितने हैं वे प्रतिक्रियावादी हैं।

देश बरबादी की तरफ जा रहा है। देश के गरीबों की हालत बिगड़ती चली जाती है। पीने का पानी नहीं है आज भारत के गाँवों में एक मील, दो मील के रेडियस में पीने का पानी गर्मी के दिनों में नहीं है। खाने की और कपड़े की कौन बात करे, रहने की कौन बात करे? इनको कोई अधिकार है, समाजवाद की बात कहने के लिए।

यह लड़ाई लंबी है। और यह केवल यहीं नहीं है। गुजरात में उन्होंने कर दिया विधानसभा को भंग। उन्होंने कहा कि यह तो मुझसे गलती हो गयी। और यहीं लालकिले पर उन्होंने भाषण दिया कि चाहे मुझे इस्तीफा दे देना पड़े, लेकिन बिहार की विधानसभा भंग नहीं होगी, नहीं होगी, नहीं होगी। अब जब से प्रधानमंत्री होकर यह कहें कि मैं इस्तीफा नहीं दूँगी, इस्तीफा नहीं दूँगी, इस्तीफा नहीं दूँगी। सारे देश की जनता आकर कहे, लाखों लोग आकर जेल में भर जायें फिर भी इस्तीफा नहीं दूँगी। मत दीजिये इस्तीफा। कभी तो चुनाव होगा। फिर फैसला होगा आपकी किस्मत का। ❑

जे.पी. की प्रेरणास्रोत–प्रभावतीजी

❑ चंद्रशेखर धर्माधिकारी

हमारे देश में पुराने जमाने में लड़की के जन्म की तारीख तो नोट ही नहीं हुआ करती थी, इसलिए हम इतना ही जानते हैं कि प्रभावतीजी का जन्म जून 1906 में सारन जिले के श्रीनगर गाँव में हुआ था। पिताजी ब्रजकिशोर बाबू बिहार में कांग्रेस के संस्थापक थे और चम्पारण आंदोलन में गांधीजी के दाहिने हाथ थे। प्रभावतीजी जनकनंदिनी जानकी की भूमि मिथिला में, दरभंगा में पलीं। औपचारिक शिक्षा नहीं पायी, सारी शिक्षा घर पर पिता के मार्गदर्शन में हुई और बाद में गांधीजी के आश्रम में 1920 में जयप्रकाशजी से उनका विवाह हुआ। ब्रजकिशोर बाबू सामाजिक सुधार के पक्षपाती थे, इसलिए शादी में लेन-देन की, तिलक-दहेज की कोई बात ही नहीं थी। शादी में तड़क-भड़क नहीं थी। उस जमाने में रूढ़िप्रिय समाज में प्रभावती दुल्हन बनकर आयी, लेकिन पर्दा किये बिना। दुल्हन की आयी हुई डोली खाली लौटा दी गयी और दुल्हा-दुल्हन पैदल ही घर पहुँचे। ग्रामीण समाज में भूचाल-सा हुआ। उससे पहले भी पिताजी के साथ घूमते समय कमीज-पायजामा भी पहना।

विवाह के बाद जेपी अमेरिका गये और प्रभावती गांधीजी के आश्रम में बापू की बेटी बनकर रहीं, पढ़ीं। बा-बापू की सेवा करती रहीं और खुले आसमान के नीचे, बिना दिवारों के खुली पाठशाला में, पढ़ाती गयीं। एक दिन एक तरफा ही जेपी से पूछे बगैर ही ब्रह्मचर्य व्रत पालने का संकल्प ले लिया। बापू भी सहम गये। आखिर गांधीजी ने जेपी को लिखा—''प्रभा अपने संकल्प पर अडिग रहेगी, तुम चाहो तो दूसरी शादी कर लो।'' व्यथित होकर जेपी ने बापू से कहा—''यह कैसे हो सकता है, आपने ऐसी कठोर बात कैसे कही?'' इस तरह का वैवाहिक ब्रह्मचर्य का उदाहरण इतिहास में रामकृष्ण परमहंस और शारदा देवी का ही था। लेकिन जेपी और प्रभावती का उदाहरण कुछ अनन्य साधारण है। रामकृष्ण परमहंस ब्रह्मचारी थे, उन्हें विवाह करना पड़ा। फिर शारदा देवी ने यह व्रत खुद के जीवन में निभाया। यहाँ उल्टा हुआ। पत्नी ने ब्रह्मचर्य का व्रत लिया और पति ने उसे चरितार्थ किया, अपनाया, जीवनभर निभाया। यह पत्नीव्रती पति की मिसाल है। पत्नी का अनुगामी कोई बनता है उसे जोरू का गुलाम कहते हैं। स्त्री लंपट भी कहते हैं। परंतु जेपी-प्रभावती की मिसाल अपने आप में अद्वितीय है। विदर्भ में वर्धा और वैनगंगा नदी के संगम के बाद एक नयी नदी का उद्‌गम होता है, जिसका नाम है प्राणहिता। विलीनीकरण नहीं संयुक्त जीवन! विवाह के बाद जयप्रभा नाम की लोक-गंगा का उदय हुआ, जो स्वायत्त और स्वतंत्र जीवन के साथ ही संयुक्त सहजीवन की मिसाल बनी। इसे ही तो अनुरूप युगल कहना चाहिए।

प्रभावतीजी गांधीजी की अनुयायी थी, तो जेपी बिलकुल विरोधी विचार के थे। खुद प्रभावतीजी ने ही लिखा है कि ''वैसे मैं भी समाजवादी विचार की हूँ, लेकिन मुझे अहिंसा मान्य है, जबकि इन्हें मान्य नहीं है। फिर भी इसमें मुझे गलती मालूम नहीं होती, क्योंकि यह अपने-अपने मन का प्रश्न है। सार्वजनिक जीवन में स्त्री को पुरुष की छाया बनकर रहना चाहिए, न तो मैं इस मत की हूँ और न ये भी इस मत के हैं। मतभेद के लिए

स्थान होना ही चाहिए, नहीं, तो जीवन रूखा-सूखा हो जायेगा।''

दूसरी ओर जेपी ने अपनी राय प्रदर्शित करते लिखा—''हम दोनों का संबंध एक विशिष्ट प्रकार का विलक्षण संबंध था। सहज ही हमारे बीच मतभेद थे, अच्छी खासी भिन्नता थी, किंतु हम दोनों के बीच जो एक नाता जुड़ा था, उसने हमें सभी प्रकार के आंतरिक और बाह्य संघर्षों से पार कर दिया और दोनों को साथ बनाये रखा। यह नाता एक पत्नी और पति के बीच में सहज मामूली नाते की अपेक्षा कुछ विशेष था। इस नाते को समझना कठिन है।'' बाद में जेपी ने स्वीकार किया कि ''आज मैं जो कुछ भी हूँ, वैसा मुझे बनने में उन्होंने मेरी मदद की। मेरे निर्माण में उन्होंने जो योगदान दिया है, उसे मैं नहीं भूल सकता।'' उन्होंने यह भी स्पष्ट किया है कि मतभेद होने के बावजूद उनका सहजीवन कैसे सफल रहा। इसका क्या इंगित है। जेपी कहते हैं—''मेरी बापू के प्रति श्रद्धा न होती तो उसके लिए जीवन असह्य हो जाता—हमारी और प्रभावतीजी की वैचारिक बहस कभी नहीं होती थी। हम लोगों का आपस में एक समझौता था कि जिसका जो विचार है, उसके अनुसार वह करे। इस पर हमारी कभी बातचीत नहीं हुई, लेकिन उनका भी वैसा स्वभाव था और हमारा भी था।'' मतभेद होते हुए 'मनभेद' नहीं था। मनोमिलन था। इसलिए वैचारिक मतभेद होते हुए भी सहजीवन सफल हो सकता है, इसकी यह अनोखी मिसाल थी। मानो 'जय-प्रभा' अलग-अलग अक्षर और व्यक्तित्व होने के बावजूद जुड़वा अक्षर की तरह संयुक्त रहे, वैसे ही जीये।

एक बार प्रभावतीजी से एक पत्रकार ने पूछा कि ''आप पति के लिए गांधी का त्याग करोगी, या गांधी के लिए पति का?''प्रभावतीजी ने जवाब दिया—''मैं बापू की अनुयायी हूँ, तो बापू का ही मुझे आदेश है कि तुम अपने पति का अनुसरण कर, उनकी आज्ञा का पालन करो, गांधीजी ने ही प्रभावतीजी को जेपी की सेवा के लिए भेजा था। वह और मैं नजदीक नहीं हैं, ऐसा तुम क्यों मान लेती हो। हमारे दोनों के उद्देश्यों में मुझे तो कोई फर्क नहीं दिखता। हाँ रास्ता भिन्न है, यह सही है, आखिर हर व्यक्ति को अपनी अंतरात्मा के प्रति वफादार रहना चाहिए'' प्रभावतीजी का वेष लौकिक था, लेकिन व्यक्तित्व अलौकिक था। जननीय नहीं, मातृत्व। प्रभावतीजी के जीवन में जननीत्व नहीं है, मातृत्व है। ऐसा मातृत्व जिसमें पति और पत्नी के रिश्ते की कोई गुंजाइश नहीं रह जाती। ऐसी माँ जो कभी जननी नहीं हुई, पति की भी माँ बन जाती है। ऐसा दादा (धर्माधिकारी) ने उनके बारे में लिखा है। ''दादा की दृष्टि से उनमें पवित्रता, निर्भयता और समर्पणमयता का अप्रतिम संगम था। तो अच्युत पटवर्द्धन की दृष्टि में उनमें आत्म विलोपी नम्रता से कोई अपरिभाज्य शक्ति प्राप्त हुई थी। सहानुभूति, जिसमें उचित-अनुचित की तीव्र विभाजन रेखा कभी दुविधाग्रस्त या संयमित नहीं किया। गरीबों के लिए मन में चिंता थी, लेकिन सामाजिक कार्य के रूप में व्यावसायीकरण नहीं हुआ था, उनका जीवन सभी मानवीय तंतु रचना से परिव्याप्त वैयक्तिक मूल्यों का सरगम था। अनामिका सुगंध से भरा।'' मैं जानता हूँ इससे अच्छा वर्णन प्रभावतीजी के जीवन का हो ही नहीं सकता।

1936 में कुछ लोगों ने उन्हें असेम्बली भेजने की योजना बनायी, तो वे चुपचाप बिहार छोड़कर चली गयीं। मतदाता सूची में भी नाम रहने नहीं दिया। विनम्र और मधुर स्वभाव के साथ किसी को ढकेलकर सामने जाने की वृत्ति नहीं थी। वह सत्ताकांक्षी नहीं थी। गांधी ने एक बार कहा, 'प्रभा तुझे मेरी गद्दी लेनी है न?' जवाब दिया, 'बापू मैं कैसे आपकी गद्दी ले सकती हूँ, मेरे पास न विद्वता है, न कोई बड़ी शक्ति, न कोई विशेष गुण।' बापू ने हँसकर जवाब दिया—''पगली है तू, मेरी गद्दी लेने के विद्वता की क्या जरूरत है? उसके लिए तो बस चार चीजें चाहिए—प्रेम, सेवा, त्याग।'' यह कागज पर लिखवा लिया। लेकिन वह कागज खो गया। इसलिए चौथी चीज क्या थी भूल गयी। तीन याद रही, जो जीवन में उतारी। सार्थकतापूर्वक! सारे स्वतंत्रता संग्राम में अग्रसर रहीं। स्वदेशी आंदोलन, असहयोग आंदोलन, सविनय अवज्ञा, भारत छोड़ो जैसे समर में भाग लिया। अकाल में सेवा की और ग्रामदान, भूदान, नक्सलवाद और चम्बल के बागियों की समस्याओं का हल ढूँढने में जेपी का साथ दिया। चरखा, खादी, सूत कताई के मार्फत बहनों की सेवा की। महिला चरखा समिति की स्थापना की। अपने लिए कुछ नहीं किया। विभूषण और शृंगार में रुचि नहीं थी, अपना घर भी नहीं था। कोई सम्पत्ति नहीं थी। महिलाएँ बेचारी वैवाहिक ब्रह्मचर्य क्या जाने, समझती थी बगैर बाल-बच्चे वाली बाँझ स्त्री हैं जीवन को सेवा का साधन माना। भोग का नहीं। लेकिन सेवा का अहंकार नहीं था। स्त्रियों के लिए भरसक काम किया। अपने सिद्धांतों पर अटल रहीं। कष्ट सहे, फिर भी सबको स्नेह दिया। सेवा करने की अद्भुत क्षमता उनमें थीं। नौकर भी घर के लड़के बनकर ही रहे। मुहब्बत की जीती-जागती मूर्ति थीं। उनका एक सपना था—महिलाएँ सुरक्षित से स्वरक्षित बनें। निर्भयता, आत्मनिर्भरता, स्वाभिमान, तेजस्विता उनमें आये और पनपे। भ्रष्टाचार को रोकने के लिए समर्थ बने। शादी-ब्याह व उस संबंधी दहेज या वरमूल्य की प्रथाओं के अभिशाप से मुक्त हो। वह ऐसा दल तैयार करना चाहती थीं जो इन समस्याओं के खिलाफ लड़े। लेकिन वह सपना पूरा नहीं हो सका, कारण था जानलेवा कैंसर की बीमारी। शुरू में जेपी से बीमारी के बारे में कुछ नहीं कहा, क्योंकि जेपी को दिल की बीमारी थी। कैंसर को इस तरह हँसकर झेला कि कोई कल्पना

भी नहीं कर सकता। उस बीमारी में भी फिक्र थी जेपी की। मैं खुद 1972 में उन्हें कलकत्ता मिलने गया। कहने लगी फिक्र है जेपी की। उन्हें तो रूमाल से कोई भी अपनी चीज भी नहीं मिलेगी। उनकी चाय कैसे बनेगी। किसी ने कहा 70 वर्ष की आयु में जेपी के लिए कठिन ग्रहदशा है। इसलिए ग्रह शांति की पूजा की व्यवस्था की और भगवान से प्रार्थना की कि उनकी आयु जेपी को मिले। मृत्यु का ऐसा सामना मैंने नहीं देखा। इसलिए 15 अप्रैल 1973 में उनकी मृत्यु के बाद जेपी ने कहा था—''मैं उनकी आत्मा की सद्गति के लिए श्राद्ध नहीं करूँगा। वे परमतत्व में लीन हो चुकीं।'' जो घनीभूत पीड़ा थी, मस्तक में स्मृति-सी छायी दुर्दिन में आँसू बनकर वह आज बरसने आयी। जेपी मृत्यु के समय साथ थे। क्या अद्भुत मरण था। जैसा जीवन वैसा ही मरण। बल्कि मरण से जीवन अधिक जीवंत और प्राणवान हो गया।

प्रभावतीजी के जीवन का परमोच्च बिन्दु था, जब जेपी, विनोबाजी के भूदान, ग्रामदान आंदोलन में शामिल हुए। उसके लिए 'जीवनदान' दिया और ग्रामदान मूलक अहिंसक क्रांति के सिपाही बने। संकल्प किया और भूदान मूलक घोषणा की। समाजवादी मंच पर चरखा आया। लाल टोपी गयी और जेपी ने अहिंसा का सिद्धांत अपनाया। प्रभावतीजी की मृत्यु के बाद जेपी ने सम्पूर्ण क्रांति का आंदोलन चलाया। जुलूस निकाला लेकिन यह मूक जुलूस था। 'हमला चाहे जैसे होगा हाथ हमारा नहीं उठेगा' यह संकल्प था। हिंसा से कोई सवाल हल नहीं होता, यह भावना थी। लोकतंत्र और ग्रामस्वराज्य की बुनियाद रचनात्मक और विधायक कार्यक्रमों के आधार पर रखना चाहते थे। और आखिर जेपी गांधी के सिर्फ अनुयायी नहीं, उत्तराधिकारी बने, यह प्रभावतीजी की ही देन है। जेपी ने प्रभावतीजी को उनके मरण के समय कहा था—''मैं तुम्हारा पाठ वगैरह सब चलाऊँगा। तुम जो करती थी, सब करूँगा।'' असल में देखा जाय तो सम्पूर्ण क्रांति आंदोलन में जो अहिंसा दाखिल हुई वह प्रभावतीजी के कारण ही। वह जो इस क्रांति की सुप्तशक्ति रही, प्रेरणा थी। लेकिन वह हमेशा नम्रतापूर्वक, झुककर जियी। श्रेय जेपी का था, प्रेरणा प्रभावतीजी की थी। कबीर ने कहा है—''जो आपको देखकर झुका होगा, उसका कद आपसे ऊँचा होगा।''

लेकिन वह ऊँचा कद नहीं चाहती थीं। जेपी का कद बढ़े यही उनकी जीवन साधना थी। हम अगर प्रभावती के सपनों के या जीवन मूल्यों के साथ जीने की शक्ति नहीं रखते तो कम-से-कम वे पैर तले कुचले न जायें। यह तो जेपी के जन्म शताब्दी वर्ष में संकल्प तो कर सकते हैं क्योंकि प्रभावतीजी की जन्म शताब्दी अलग नहीं होगी और हो भी नहीं सकती। जन्म की तारीख का ही पता नहीं है। ❑

स्त्री : जीवन की पवित्रता की संरक्षिका

❑ महात्मा गांधी

अहिंसा का अर्थ है असीम और अनंत प्रेम; दूसरे शब्दों में उसका अर्थ है कष्ट सहने की अपार क्षमता। स्त्री के सिवा जो पुरुष की माता है, यह क्षमता अधिक से अधिक मात्रा में कौन दिखाता है? उसे यह भूल जाना चाहिए कि वह पुरुष की काम-वासना की पूर्ति का साधन कभी थी या हो सकती है। तब वह पुरुष की माता, पुरुष की निर्मात्री और पुरुष की मूक मार्गदर्शिका के रूप में पुरुष के साथ अपना गौरवपूर्ण पद प्राप्त करेगी। शांति के अमृत की प्यासी युद्धरत दुनिया को शांति की कला सिखाने की क्षमता भगवान ने स्त्री को ही प्रदान की है।

अगर मैं स्त्री का जन्म पाऊँ, तो मैं पुरुष की ऐसी किसी भी झूठी धारणा के खिलाफ विद्रोह कर दूँ कि स्त्री उसका खिलौना बनने को पैदा हुई है। स्त्री के हृदय की गहराई में प्रवेश करने के लिए मैं मन से तो स्त्री ही बन गया हूँ। स्त्री आत्म-बलिदान की जीवित मूर्ति है। लेकिन दुर्भाग्य से आज वह अपने इस जबरदस्त लाभ को नहीं समझती, जो पुरुष को प्राप्त नहीं है। जैसा कि टॉल्स्टॉय कहा करते थे, स्त्रियाँ पुरुष के जादुई प्रभाव का शिकार बनी हुई हैं।

स्त्री को अबला कहना उनकी मानहानि करना है, यह पुरुष का स्त्री के प्रति घोर अन्याय है। लेकिन अगर बल का अर्थ नैतिक बल है, तो स्त्री पुरुष से अनंत गुनी ऊँची है। जीवन में जो कुछ पवित्र और धार्मिक है, स्त्रियाँ उसकी विशेष संरक्षिकाएँ हैं।

यह तो मुझे सूरज की तरह साफ दिख रहा है कि गर्भ गिराना अपराध होगा, जो भूल इस बेचारी स्त्री से हुई है वैसी बेशुमार भूलें पति करते रहते हैं, लेकिन उनसे कोई कुछ नहीं कहता। समाज उन्हें न केवल माफ कर देता है, बल्कि उन्हें बुरा भी नहीं बताता। और यह बात भी है कि पुरुष तो अपना पाप छिपा सकता है लेकिन स्त्री अपनी शर्म नहीं छिपा सकती।

जब किसी स्त्री पर हमला हो तो उसे हिंसा या अहिंसा का विचार करने नहीं बैठना चाहिए। उसका पहला फर्ज अपना बचाव करना है। उसे अपनी इज्जत की रक्षा के लिए जो भी तरीका या उपाय सूझे, उसका उपयोग करने की उसे छूट है। ईश्वर ने उसे नाखून और दाँत दिये हैं। उसे सारा जोर लगाकर इनका इस्तेमाल करना चाहिए और जरूरत हो तो प्रयत्न करते-करते मर जाना चाहिए। ('द माइन्ड ऑफ महात्मा गांधी' से)

प्रस्तुति : बद्रीनाथ सहाय

दस्तावेज

जनता का मांग-पत्र

❑ जयप्रकाश नारायण

सम्पूर्ण क्रांति आंदोलन ने तब एक नया आयाम ग्रहण कर लिया जब सारे देश से लाखों-लाख समर्थकों-कार्यकर्ताओं ने दिल्ली दरवाजे पर दस्तक दी—सिंहसान खाली करो कि जनता आती है! लोकनायक ने सारे देश की तरफ से लोकसभा के अध्यक्ष को 'जनता का मांगपत्र' सौंपा और देश को एक रचनात्मक दिशा दी। वह ऐतिहासिक माँगपत्र यहाँ प्रकाशित किया जा रहा है।

हम भारत के नागरिक बिहार की जनता के संघर्ष के प्रति, जो पूरे देश की भावनाओं का प्रतीक बन गया है, एकात्मकता जाहिर करने के लिए यहाँ इकट्ठे हुए हैं। ऐसे समय में जब सार्वजनिक जीवन और सुशासन के बुनियादी सिद्धांत कुचले जा रहे हैं, नागरिकों का कर्त्तव्य है कि वे अपना विरोध जाहिर करें। हमारा आज का यह अभियान न्याय की प्राप्ति और लोकतंत्र की रक्षा के लिए है।

हम समाज में वह सम्पूर्ण क्रांति लाने के लिए कृतसंकल्प हैं जो गांधीवादी ढाँचे के अंतर्गत सामाजिक-आर्थिक समानता, वास्तविक लोकतंत्र और नैतिक मूल्यों पर आधारित एक नयी व्यवस्था का निर्माण करेगी।

अपने संजोये गये इन उद्देश्यों की प्राप्ति की दिशा में आगे बढ़ने के लिए हम निम्नलिखित अत्यावश्यक माँगों की ओर ध्यान दिलाना चाहते हैं।

बिहार और गुजरात में चुनाव

बिहार विधानसभा ने राज्य के लोगों का विश्वास खो दिया है। विधानसभा जनता के संपर्क में आने से भय खाती है। उसने अपने आपको अवरोधों और संगीनों के घेरे में बन्द कर लिया है। वह एक लंबे अरसे से जनता की धड़कनों का प्रतिनिधित्व नहीं करती। वह एक ऐसी सरकार का समर्थन करती है जिसने राज्य में कुशासन कायम कर रखा है और जनता की चिर आकांक्षाओं के अधिकारों को पैरों तले रौंद डाला है।

कुशासन और सरकार में व्याप्त भ्रष्टाचार समाप्त करने की बजाय बिहार विधानसभा की उसमें भागीदारी बन गयी है। राजनीतिक प्रभु जनता, लंबे अरसे से कानूनी प्रभु की बरखास्तगी की माँग कर रही है, जिसने अनुचित रूप से सत्ता अधिकृत कर रखी है।

गुजरात में एक साल पहले जन-आंदोलन के द्वारा राज्य सरकार को अपदस्थ कर विधानसभा भंग करायी गयी, पर वहाँ अभी तक स्वतंत्र चुनाव कराने का आदेश नहीं हुआ है। इसीलिए हमारी पहली माँग यह है कि तुरंत बिहार सरकार बरखास्त की जाय और विधानसभा भंग की जाय तथा शीघ्र बिहार और गुजररात में चुनाव कराने के आदेश जारी किये जायें।

जनता के सामाजिक-आर्थिक अधिकार

सरकार की विनाशकारी नीतियों का परिणाम यह हुआ है कि एक तरफ तो आर्थिक गतिरोध पैदा हो गया है और दूसरी तरफ गरीबी बढ़ी है, कीमतें आसमान छूने लगी हैं और बेरोजगारी में वृद्धि हुई है। आवश्यक वस्तुओं का अभाव कमजोर तबके के लोगों की जिंदगी का एक स्थायी अंग बन गया है। लगभग 60 फीसदी लोग आधा पेट खाकर अपनी जिंदगी बसर कर रहे हैं। और ऐसे लोगों की संख्या में भयानक गति से वृद्धि हो रही है। सामाजिक विषमताएँ बढ़ती जा रही हैं।

लोगों का महत्त्वपूर्ण सामाजिक-आर्थिक अधिकारों की सुरक्षा का अविलंब प्रबंध आवश्यक है और इसके लिए निम्न कदम उठाये जायें :

1. समाज के कमजोर तबके, खासकर आबादी के 60 प्रतिशत सबसे गरीब लोगों को जीवन की बुनियादी आवश्यकताओं की चीजें उचित दाम पर उपलब्ध करायी जायँ, जो उनकी सामर्थ्य के भीतर हो।

2. आवश्यक वस्तुओं के मूल्य उनकी लागत से मेल खाते हों। साथ ही कृषि और औद्योगिक वस्तुाओं के मूल्यों के बीच समुचित संतुलन हो। मूल्यों में स्थिरता लायी जाये और मूल्य-वृद्धि राष्ट्रीय आय में होनेवाली वृद्धि की रफ्तार से अधिक न हो।

3. सबको आवश्यकता-आधारित न्यूनतम मजदूरी और अमदनी की गारंटी मिले।

4. आर्थिक विषमताएँ इतनी कम कर दी जायें कि वे एक और दस के अनुपात की समुचित मर्यादा के अंदर आ जायें।

5. ऐसे कारगर भूमि-सुधार किये जायें जिनके परिणामस्वरूप भूमि का समतामूलक पुनर्वितरण सुनिश्चित हो, 'जो जोते जमीन उसकी' के सिद्धांत के आधार पर स्वामित्व सुरक्षित हो, भूमिहीनों को बासगीत की जमीन मिले तथा खेतिहर मजदूरों को समुचित मजदूरी सुनिश्चित रूप से प्राप्त हो जिसका एक हिस्सा उन्हें अनाज के रूप में दिया जाय।

6. सब लोगों को पूर्ण रोजगार का आश्वासन मिले। इसके लिए उपयुक्त तकनीक के प्रयोग द्वारा कृषि और ग्रामीण अर्थव्यवस्था के विकास को सर्वोच्च प्राथमिकता दी जाये। इसी प्रकार उद्योगीकरण के कार्यक्रम ऐसी

तकीनकों और योजनाओं पर आधारित किये जायें जिनमें मानव-शक्ति का इस्तेमाल व्यापक पैमाने पर हो सके।

7. राष्ट्रीय मितव्ययिता पर आधारित शासनतंत्र का निर्माण इस संबंध में दिशा-निर्धारण के तौर पर किया जाये। इसमें विलास की वस्तुओं के आयात तथा देश में उनके निर्माण पर रोक लगायी जाये।

लोकतांत्रिक अधिकार और नागरिक स्वतंत्रता

संविधान की भावना के विरुद्ध सरकार ने राष्ट्रीय आपातकालीन स्थिति कायम कर रखी है। विधि के शासन का स्थान आंतरिक सुरक्षा कानून (मीसा) भारत रक्षा कानून (डीआईआर) तथा अध्यादेशों के शासन ने लिया है। बहुसंख्यक लोगों को लोकतांत्रिक अधिकारों से वंचित किया जा रहा है। जनता के वैध एवं शांतिपूर्ण संघर्ष को केन्द्रीय एवं राज्य पुलिस द्वारा दबाया जा रहा है। लोकतंत्र के सत्व की पुनःस्थापना, सुरक्षा एवं विस्तार के लिए हम माँग करते हैं कि—

1. आपातकालीन स्थिति तथा मीसा, डीआईआर और नागरिक स्वतंत्रताओं के विरोध में काम करनेवाले अन्य कानूनों को अविलंब वापस लिया जाये।

2. स्कूलों, कॉलेजों और विश्वविद्यालयों के सभी शिक्षक और गैरशिक्षक कर्मचारियों को सारे राजनीतिक और ट्रेड यूनियन संबंधी अधिकार दिये जायें।

3. सार्वजनिक क्षेत्र के व्यावसायिक और औद्योगिक प्रतिष्ठानों के मजदूरों और कर्मचारियों को सारे राजनीतिक और ट्रेड यूनियन संबंधी अधिकार प्रदान किये जायें।

स्वतंत्र और निष्पक्ष चुनाव

यह अत्यंत आवश्यक है कि संसद और विधानसभाएँ जन-आकांक्षाओं के अधिक अनुकूल बनें। चुनावों को सरकारी मशीनरी, धन-शक्ति और बल-प्रयोग से प्रभावित न होने दिया जाये। अतः हमारा आग्रह है कि—

1. संयुक्त चुनाव शासन संसदीय समिति की, जिसमें शासक दल के सदस्य भी शामिल थे, सर्वसम्मत सिफारिशें अविलंब क्रियान्वित की जायें।

2. चुनाव की तिथियाँ घोषित होने के बाद सरकार को महत्त्वपूर्ण नीति-वक्तव्य देने, परियोजनाओं की मंजूरी देने, शिलान्यास करने और मतदाताओं को लुभा सकनेवाले अन्य ऐसे कार्यक्रमों की घोषणा करने की इजाजत न हो।

3. चुनाव आयोग एक बहुसदस्यीय निकाय बने जिसमें असंदिग्ध चरित्रवाले व्यक्ति, जैसे सर्वोच्च न्यायालय एवं उच्च न्यायालय के जज रहें। उनका चयन एक बोर्ड के जरिये किया जाये, जिसमें सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश, प्रधानमंत्री और विरोधी दल के नेता (या विरोधी दल के ऐसे प्रतिनिधि जो सर्वमान्य हों) रहें।

4. राजनीतिक दलों के लिए चुनाव-खर्च का विवरण देना अनिवार्य हो। विवरण में वे सारे खर्च शामिल किये जायें जो दलों द्वारा अलग-अलग उम्मीदवारों और सामान्य दलीय कार्यक्रमों पर किये गये हों।

5. शासक दल के लिए रेडियो, टेलीविजन, सरकारी वाहनों, हवाई जहाज तथा अन्य सरकारी साधनों का दलीय उद्देश्यों के लिए इस्तेमाल निषिद्ध होना चाहिए। विरोधी दलों के साथ बराबरी की शर्तों पर उनका इस्तेमाल किया जा सकता है।

6. मतदान के एक सप्ताह पहले पूरे चुनाव तक शराबबंदी लागू की जाय।

7. मतदान के दिन अनिवार्य सेवाओं के लिए इस्तेमाल में आ रही गाड़ियों को छोड़कर निजी मोटरगाड़ियों सहित तमाम सवारी गाड़ियों का चलना रोक दिया जाय।

8. मतगणना हर मतदान केंद्र पर हो, मतदान के तुरंत बाद ही चुनाव केंद्र के मतपत्रों का हिसाब जाहिर कर दिया जाये और तीन या चार मतपेटियों की जगह सिर्फ एक ही मतपेटी पर मतदान केंद्र को उपलब्ध रहे। परंतु, आकस्मिक स्थिति के लिए अतिरिक्त प्रबंध रखा जाय।

9. हर मतदान केंद्र पर, कुल मिलाकर जितने मतपत्र डाले गये हों, या जिनका किसी दूसरी तरह से इस्तेमाल किया गया हो, उनका हिसाब चुनाव लड़नेवाले सभी दलों के उम्मीदवारों के एजेंटों को अवश्य उपलब्ध कराया जाये, जिसमें प्रथम और अंतिम मतपत्रों की संख्या शामिल रहे।

10. मतदान करने की उम्र घटाकर 18 वर्ष की जाय।

11. प्रतिनिधियों को वापस बुलाने के अधिकार का समावेश संविधान में किया जाय।

राजनीति सत्ता का विकेंद्रीकरण

सत्ता के बढ़ते हुए केंद्रीकरण तथा सरकार द्वारा लोकतंत्र को समूल नष्ट करने की कोशिश को ध्यान में रखते हुए, वास्तविक स्वशासन के लिए सत्ता के विकेंद्रीकरण और ग्रामपंचायतों, जिला परिषदों, राज्यों और केंद्र के बीच उसके प्रभावी रूप से वितरण की संवैधानिक गारंटी आवश्यक है।

शिक्षा-सुधार

1. शिक्षा इस माँग-पत्र में निहित आदर्शों के अनुकूल समाज के निर्माण का माध्यम बने और यह पश्चिमीकरण के बदले आधुनिकीकरण का साधन हो।

2. राष्ट्रीय आवश्यकताओं के अनुकूल शिक्षा के गुण एवं तत्त्व के विकास के लिए कारगर कदम उठाये जायें। मौजूदा ढाँचे में प्रत्येक स्तर पर सुधार किया जाये।

3. माध्यमिक स्तर से शिक्षा को रोजगार अभिमुखी बनाया जाय, जिसके साथ आर्थिक योजना की एक ऐसी प्रणाली हो, जो रोजगार की गारंटी करे। शिक्षण संबंधी नौकरियों को छोड़ अन्य नौकरियों के लिए विश्वविद्यालय की डिग्री आवश्यक न रहे।

4. पाँच वर्षों के अंदर प्राथमिक शिक्षा

और वयस्क शिक्षा के सार्वत्रिक प्रसार को सर्वोच्च प्राथमिकता दी जाय।

5. शिक्षण संस्थाओं में सरकार के हस्तक्षेप पर रोक लगायी जाये। इन संस्थाओं का प्रबंध साधारणतः उनके शिक्षकों को सौंपा जाये और उसमें लोकतांत्रिक ढंग से छात्रों की भागीदारी हो।

राजनीतिक भ्रष्टाचार का उन्मूलन

भ्रष्टाचार हमारे राजनीतिक जीवन के प्राणतत्त्वों को खाये जा रहा है। इसके कारण विकास की प्रक्रिया छिन्न-भिन्न हो रही है, प्रशासन कमजोर बन रहा है तथा नियम-कानून का मखौल हो रहा है। साथ ही इससे जनता का विश्वास नष्ट हो रहा है और उसका लोक-प्रसिद्ध धैर्य समाप्त हुआ जा रहा है। जनजीवन को भ्रष्टाचार के कैंसर से मुक्त करने के लिए हमारी माँग है कि—

1. उच्चाधिकारयुक्त न्यायाधिकरणों की स्थापना हो और उन्हें प्रधानमंत्री एवं मुख्यमंत्रियों सहित उच्चपदस्थ व्यक्तियों पर लगाये गये आरोपों की जाँच करने का अधिकार हो। ऐसे मामलों में जहाँ भ्रष्टाचार के आरोपों की पुष्टि हो चुकी हो, दोषी पाये गये व्यक्तियों पर अनिवार्य रूप से मुकदमा चलाया जाये। सभी मामलों में जाँच-रपट अवश्य प्रकाशित करायी जाये।

2. संतानम कमिटी की भ्रष्टाचार-उन्मूलन संबंधी सिफारिशें लागू की जायें। यह संदेह होने पर कि मामला प्रत्यक्ष रूप से जाँच के योग्य है या नहीं, निर्णय सर्वोच्च न्यायालय या उच्च न्यायालय के द्वारा या जहाँ कार्यपालिका से स्वतंत्र और पर्याप्त अधिकारों से युक्त न्यायाधिकरण हों वहाँ ऐसे न्यायाधिकरण द्वारा किया जाये।

3. एक ऐसा कानून बनाया जाये जिसके अनुसार सभी सार्वजनिक पदाधिकारियों के लिए पद-ग्रहण करने के तुरंत बाद और तत्पश्चात समय-समय पर अपनी संपत्ति की घोषणा करना अनिवार्य हो। ❑

दृष्टि और सृष्टि

बहुआयामी परिवर्तन है सम्पूर्ण क्रांति

❑ अरविंद अंजुम

सन् 1974 के आंदोलन के दौरान लोकनायक जयप्रकाश नारायण ने छात्रों की माँगों पर केन्द्रित उभार को व्यापक फलक देते हुए—सम्पूर्ण क्रांति का आह्वान किया। तबसे लेकर आज तक एक तरफ जहाँ सम्पूर्ण क्रांति की विचारधारा को सामाजिक जीवन में रूपांतरित करने के प्रयास जारी हैं, वहीं कुछ सवाल भी उठाये जाते रहे हैं। किसी ने इसे नारे उछालना कहकर उलाहना दी तो किसी ने यह प्रश्न किया कि क्रांति तो स्वयं में ही पूर्ण होती है तो फिर इसके लिए अलग से विशेषण लगाने की जरूरत क्या है। कुछ तो ऐसे भी हैं जो क्रांति की विचारधारा के खास ब्रांड को ही मान्य करते हैं। अगर कोई नन ब्रांडेड बात आ जाय तो उसे देख-समझ भी नहीं पाते हैं।

सम्पूर्ण क्रांति, क्रांति की स्थापित विचारधाराओं, पद्धतियों, तरीकों के विरोध में नहीं बल्कि पूरक बनने की प्रक्रिया है। अब तक की क्रांतियों के प्रयासों में जो चूक हुई है, उसे पाटने की कोशिश है। जबकि क्रांति के परिवर्तन की अवधारणा से प्रेरित एक जमात ने माना कि सामाजिक उत्पीड़न से मुक्ति के लिए धर्म-परिवर्तन एकमात्र विकल्प है। इस प्रकार विभिन्न धाराएँ किसी खास तत्व को निर्णायक मानती रही हैं। यह सही है कि खास कालखंड में, किसी खास संदर्भ में किसी खास बात पर ज्यादा जोर देना पड़ता है। जैसे अंग्रेजी राज्य के दरम्यान आजादी की माँग पर जोर दिया गया या फिर जातिगत शोषण के विरूद्ध सामाजिक समता के कार्यक्रमों पर जोर दिया जाता रहा है। पर जोर देने का तात्पर्य यह नहीं होता कि वही आखिरी बात है। ऐसा सोचना ही क्रांतिकारी या परिवर्तनवादी विचारधारा को अवरूद्ध करती है। सम्पूर्ण क्रांति वादमुक्त सोच को प्रश्रय देती है और विकसित करती है।

विश्व की जो भी क्रांतियाँ चिन्हित व मान्य की जाती रही हैं वे सब (औद्योगिक क्रांति को छोड़कर) तारीखों एवं ढाँचों के लेबल तक केन्द्रित रही हैं। यह सही है कि इन घटनाक्रमों के लिए भी दीर्घकालिक व कष्टसाध्य प्रयास करने पड़े हैं। पर इन घटनाक्रमों का इतिहास में योगदान भी है। पर सत्ता के परिवर्तन व शपथ ग्रहण कार्यक्रम को ही क्रांति का पैमाना व प्रतीक नहीं माना जा सकता है। वास्तव में सांगठनिक बल व एक हद तक प्राप्त जनसमर्थन से क्रांति का ढाँचा तो स्थापित कर लिया गया, परन्तु क्रांति के मूल्यों की इन ढाँचों में प्राण-प्रतिष्ठा नहीं हो सकी। अतः कालक्रम में क्रांति के ये कथित ढाँचें बिखरते चले गये।

सम्पूर्ण क्रांति ढाँचें के साथ मूल्यों को आत्मसात करने की कवायद है। क्रांति आंतरिक व बाह्य परिवर्तन के मेल से सम्पूर्ण होती है। क्रांति के वाहक दकियानूसी परंपराओं एवं कर्मकांडों के सामने समर्पण करते रहते हैं और कयामत की तरह क्रांति का इंतजार करते हैं, जिस दिन सारा हिसाब-किताब होगा।

इसलिए सम्पूर्ण क्रांति को किसी स्वर्णिम तिथि का इंतजार नहीं है। यह औद्योगिक क्रांति (उदाहरण को अन्यथा नहीं लेंगे) की तरह हर क्षण घटित होनेवाले हैं, हरएक व्यक्ति व ढाँचें, पद्धति व प्रक्रिया, आंतरिक व बाह्य—समग्र परिवर्तन है। यह सतत परिवर्तन है, आरोहण है। यह हर क्षण घटित होता है और हमारे आचरण में प्रकट होता है। ❑

जे.पी. और सम्पूर्ण क्रांति

❑ सुशील कुमार

बिहार के छात्र आंदोलन के दौरान 5 जून, 1975 को पटना के गांधी मैदान की वृहत सभा में जे.पी. ने कहा ''.....दूर जाना है मित्रों! लंबी लड़ाई है! सिर्फ विधानसभा भंग करा देने से उद्देश्य पूरा नहीं होगा। यह परिवर्तन का संघर्ष है; सम्पूर्ण क्रांति है.....।'' इस वक्तव्य को उन्होंने अपने उसी भाषण में विस्तारपूर्वक समझाया था। बिहार (झारखंड सहित) के हर जिले से लाखों की संख्या में छात्र आये हुए थे। जे.पी. का वह भाषण ऐसा प्रतीत हो रहा था, मानो एक शिक्षक लाखों विद्यार्थियों का क्लास ले रहा हो और वर्ग-कक्षा में 'पिन ड्राप साइलेंस' हो। इसी क्रम में जोरों की आँधी के साथ बारिश भी शुरू हो गयी। इसके बावजूद न शिक्षक, न ही विद्यार्थियों पर इस तूफान का कोई असर दिखा।

सभी श्रोता छात्र थे। उन्हें पहली बार गहन राजनीतिक चिंतन सुनने को मिल रहा था। जे.पी. क्रांति, उसकी सम्पूर्णता और इसके आयामों को सहज ढंग से परिभाषित कर रहे थे। डेढ़ घंटे के अपने भाषण में उन्होंने अपने वैचारिक निचोड़ को स्पष्ट किया। ईमानदारी से कहें, तो अधिकांश श्रोताओं को पूरी तरह से बात पल्ले नहीं पड़ी थी। लेकिन उनकी बात को पूरी तरह से समझने और आत्मसात करने की प्रेरणा जरूर मिली थी। यह अपेक्षा बाद में उनके उस वक्तव्य का संकलित रूप मुद्रित होकर आने के बाद पूर्ण हुई।

एक सभा में आचार्य कृपालानी ने कह दिया कि ''जे.पी. सोशलिस्ट हैं। सोशलिस्टों को नारा देना बखूबी आता है। 'सम्पूर्ण क्रांति' भी उसी तरह का एक नारा ही लगता है। मुझे तो समझ में नहीं आती यह सम्पूर्ण क्रांति।'' कृपालानीजी ने यह बात 1977 में गांधी मैदान, पटना में आयोजित 'अमृत महोत्सव' की सभा में कही थी। कृपालानीजी जे.पी. से वरिष्ठ थे और जे.पी. की उपस्थिति में यह बात कही थी। जे.पी. ने लिहाजवश उनकी इस बात का कोई उत्तर नहीं दिया। लेकिन इस वक्तव्य ने सम्पूर्ण क्रांति विरोधियों और क्रांति के स्वघोषित अलंबरदारों को एक मौका दे दिया। आज भी कई राजनेता और बुद्धिजीवी अकसर कहते हुए पाये जायेंगे कि ''जे.पी. की सम्पूर्ण क्रांति एक 'भेग' अवधारणा है।''

उपरोक्त धारणाओं का जवाब देना या सम्पूर्ण क्रांति के आयामों सहित समझाना इस आलेख का उद्देश्य नहीं है। सवाल यह है कि सम्पूर्ण क्रांति पूर्व की क्रांति की परिभाषाओं से कैसे भिन्न है? क्रांति शब्द का सामान्य अर्थ है—परिवर्तन। लेकिन परिवर्तन तो प्रकृति का नियम है, जो होता ही रहता है। इसलिए क्रांति उस परिवर्तन को कहा जाता है, जो समाज के जागरूक तबके के क्रियाशील व्यक्तियों के संयुक्त प्रयास द्वारा हो और 50 या 100 साल में होनेवाले परिवर्तन को बहुत कम समय में घटित कर दिया जाय, साथ ही यह परिवर्तन टिकाऊ हो।

मार्क्सवाद के उदय और रूस सहित दुनिया के कई क्षेत्रों में हुए इसके प्रयोग से क्रांति की एक परिभाषा स्थापित हुई थी। इसी सीमित परिभाषा को क्रांति की अंतिम प्रक्रिया मानी जाती थी। आज भी लगभग सभी मार्क्सवादी क्रांति की उसी परिभाषा से बद्ध हैं। जबकि हिंसक संघर्ष, वर्ग शत्रु का सफाया और सर्वहारा की तानाशाही के आधार पर हुए परिवर्तनों की सीमाएँ स्पष्ट हो चुकी हैं। कम्युनिस्ट क्रांति को सबसे पहले सफल करनेवाला राष्ट्र सोवियत रूस अब कम्युनिस्ट राज्य नहीं रहा। स्पष्ट है कि क्रांति की उस तथाकथित परिभाषा की सीमाएँ थीं। फिर भी अपने ही धर्मग्रंथ को अंतिम सत्य मानकर चलनेवालों की तरह ही प्रगतिशील क्रांतिकारी भी रूस और वीन की क्रांति का अनुवाद करने (Translation) में आज भी लगे हुए हैं।

जे.पी. को मार्क्सवादी क्रांतियों की अपूर्णताएँ स्पष्ट हो गयी थीं। इसी कारण उन्होंने क्रांति के पहले 'सम्पूर्ण' शब्द को जोड़ा। सब जानते हैं कि जे.पी. अमेरिका से पूर्ण मार्क्सवादी बनकर लौटे थे। भारत में चल रही आजादी के आंदोलन का हिस्सा बनने, गांधी के सानिध्य में आने, कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी की स्थापना और प्रकारान्तर से सक्रिय दलीय राजनीति से अलग होकर विनोबा के भूदान आंदोलन में शामिल होने की लंबी विचार-यात्रा उनकी हुई थी। 1974 के छात्र असंतोष में उन्हें व्यवस्था-परिवर्तन की किरण दिखायी दी थी। इस छात्र आंदोलन का नेतृत्व संभालने के बाद उन्होंने सामाजिक-राजनीतिक बदलाव की प्रक्रिया को स्पष्ट करते हुए 'सम्पूर्ण क्रांति' की अवधारणा को रखा।

संक्षेप में कहें तो सम्पूर्ण क्रांति पूर्व की क्रांतियों की सीमाओं को पहचान कर उसे पूर्णता प्रदान करने की अवधारणा है, जिसमें हिंसा का कोई स्थान नहीं है, मजबूत और भरा-पूरा लोकतंत्र उसकी पूर्व शर्त है और जिसका अगुवादस्ता युवा माना गया है।

जे.पी. ने सम्पूर्ण क्रांति के जो सात आयाम बताये थे, वे थे—राजनीतिक क्रांति, सामाजिक क्रांति, आर्थिक क्रांति, शैक्षणिक क्रांति, सांस्कृतिक क्रांति, वैचारिक क्रांति और आध्यात्मिक क्रांति। इन सातों आयामों में कोई क्रम नहीं है कि कौना-सा आयाम पहले और कौन-सा बाद में होगा। ये सभी आयाम एक साथ चलेंगे या किसी विशिष्ट स्थिति में किसी एक की प्राथमिकता होगी, यह परिस्थितियों पर निर्भर करेगा। लेकिन सभी आयामों को एक साथ लेकर चलना अनिवार्य होगा। इनमें 'सुपर स्ट्रक्चर' और 'बेसिक स्ट्रक्चर' का कोई प्रश्न ही नहीं है। ❑

सम्पूर्ण क्रांति का प्रथम और अंतिम चरण

❑ न्याय. चन्द्रशेखर धर्माधिकारी

लोकनायक जयप्रकाशजी का व्यक्तित्व ही इतना महान था कि उसे समझना हमारे लिए आसान नहीं था। प्रसिद्ध दार्शनिक इमरसन का एक वाक्य है, वे कहते हैं, 'To be great is to be misunderstood' महान होने में निहित है गलत समझ लिया जाना, इसीलिए कुछ लोगों ने सम्पूर्ण क्रांति के आंदोलन को 'उधम' कहा, तो जयप्रकाशजी के विराधियों ने उसे 'सम्पूर्ण भ्रांति' का आंदोलन कहा। लेकिन जयप्रकाशजी ने ही यह स्पष्ट रूप से कह दिया था कि ''आज तक कोई क्रांति ऐसी नहीं हुई है, जो किताब के मुताबिक हुई हो। हर क्रांति अपनी किताब स्वयं लिखती है।''

क्रांति का अंकगणित नहीं होता, नुस्खे नहीं होते; क्रांति के प्रतीक होते हैं जिनका मूल्य होता है, जिनकी सिर्फ कीमत नहीं होती। दुर्भाग्य से जिनके प्रस्थापित समाज-रचना में हित-संबंध सुरक्षित होते हैं, वे लोग परिवर्तन नहीं चाहते, क्योंकि परिवर्तित समाज में उनका क्या स्थान होगा, इसकी उन्हें आश्वस्ति या गारंटी नहीं होती। और जो परिवर्तन चाहते हैं, वे भी उससे डरते हैं। परिणामस्वरूप जो परिवर्तन चाहते हैं वे भी क्रांति नहीं चाहते, सिर्फ सत्ता-परिवर्तन या व्यक्ति-परिवर्तन चाहते हैं। वे सम्पूर्ण क्रांति की, जो समग्र क्रांति का अभिन्न अंग है, समझना भी नहीं चाहते। इसलिए हम जयप्रकाशजी की 'सम्पूर्ण क्रांति' की संकल्पना को ही ठीक से समझ नहीं पाये, यही असली शोकान्तिका है।

जयप्रकाशजी ने जेल में लिखी अपनी डायरी में जो लिखा है, उससे यह स्पष्ट होता है कि उनकी 'सम्पूर्ण क्रांति' की संकल्पना वस्तुतः एक 'समग्र क्रांति' की संकल्पना थी, जिसमें 1. सामाजिक क्रांति, 2. आर्थिक क्रांति–जिसमें औद्योगिक क्रांति, कृषि क्रांति तथा यांत्रिक क्रांति भी अभिप्रेत थीं, 3. राजनीतिक क्रांति, 4. सांस्कृतिक क्रांति, 5. वैचारिक या बौद्धिक क्रांति, 6. शैक्षणिक क्रांति तथा 7. आध्यात्मिक क्रांति का समावेश था। तो इसमें क्रांति का समग्र दर्शन निहित था। सारांश में कहा जाय तो यह सम्पूर्ण क्रांति शांतिपूर्वक तो होगी ही, लेकिन वह समग्र क्रांति होने के कारण,उसमें प्रतिक्रांति को फिर अवसर नहीं होगा या उसकी संभावना ही नहीं रहेगी, ऐसी भावना थी। मतलब प्रचलित क्रांति की संकल्पना से सम्पूर्ण क्रांति की भावना सम्पूर्णतः भिन्न थी। इतना ही नहीं, लोकतंत्र को मजबूत बनाना हो तो उसके पीछे लोकशक्ति और लोकसत्ता का आधार खड़ा करना चाहिए, यह जे.पी. की भूमिका थी। लेकिन वह स्वयं 'सत्ताकांक्षी' या 'सत्ताधारी' नहीं थे। दुर्भाग्य से उनके साथ जो सत्ताकांक्षी लोग जुड़े थे, वे सम्पूर्ण क्रांति नहीं चाहते थे। उनका नारा था 'इन्दिरा हटाओ और हमको बैठाओ'; जिसके कारण सम्पूर्ण क्रांति की भूमिका ही प्रदूषित और कलुषित हो गयी और राजनीतिक सत्ता-परिवर्तन के बाद स्वयं जयप्रकाशजी को ही कहना पड़ा कि ''साँपनाथ गये और नागनाथ आये।'' सिर्फ व्यक्ति बदले, राजनीतिक व्यवस्था में परिवर्तन नहीं हुआ। सम्पूर्ण क्रांति की बात तो अलग ही रह गयी। इतना ही नहीं, सम्पूर्ण क्रांति की संकल्पना में जो राजनीति का पर्याय ढूँढ़ने की बात थी, वह संकल्पना भी नहीं रही और, जो राजनीतिक सत्ता से अलग थे, वे भी चुनावी उम्मीदवार बने। इतना ही नहीं 'स्वयंसेवी' और 'सर्वोदयी' संस्थाओं में भी 'चुनाव' होने लगे। सत्ताकांक्षा और पदाकांक्षा बढ़ी और समन्वय, संवादित्व, सर्वानुमति और सर्वसम्मति के मार्ग समाप्त हो गये। सेवक भी संस्थानिक बने और अदालत-मुक्ति के बदले अदालतबाजी बढ़ी। यही सबसे बड़ा दुर्भाग्य है। जयप्रकाशजी की सम्पूर्ण क्रांति के विचार उनके ही रहे। उन्हींके नाम से वे पहचाने जाते हैं। वे कभी-भी हमारे विचार नहीं बने और वह आंदोलन भी हमारा आंदोलन नहीं बना।

मैंने सबसे पहले जयप्रकाशजी के दर्शन किये और उनका भाषण सुना, तब मैं महाविद्यालय में पढ़ता था। विद्यार्जन के उन दिनों में विद्यार्थी-आंदोलन से मेरा निकट संबंध था। उस समय हरएक राजनीतिक दल का विद्यार्थियों के लिए पक्षनिष्ठ संगठन था। अपनी बुद्धि का उपयोग न कर स्फोटक की तरह काम करनेवाले दो ही माध्यम माने जाते थे—एक विद्यार्थी और दूसरा मजदूर अथवा कामगार वर्ग। राजनीतिक नेताओं का अलिखित नियम था कि विद्यार्थी और कामगार संगठनों को अपनी शक्ति का प्रयोग तो करना है, किन्तु अक्ल या बुद्धि केवल राजनीतिक नेताओं से उधार लेनी है। इन संगठनों का इस तरह केवल उपयोग किया जाता था। इसी कारण 1948 में यह विचार प्रस्तुत हुआ कि विद्यार्थियों का ऐसा अखिल भारतीय संगठन होना चाहिए जो दलनिरपेक्ष हो। 1948 में बंगलुरु में हुए अखिल भारतीय विद्यार्थी कांग्रेस की सभा में यह निर्णय लिया गया। अखिल भारतीय स्तर पर एक समिति नियुक्त हुई। उस समिति को एक ढाँचा तैयार करना था। इस समिति के अध्यक्ष डॉ. जाकिर हुसैन थे। 'नेशनल यूनियन ऑफ स्टूडेण्ट्स' इस विद्यार्थी संगठन का स्वरूप आने पर अखिल भारतीय विद्यार्थी कांग्रेस का विसर्जन करने का निर्णय लिया

गया था; इसके लिए एक सलाहकार समिति का भी गठन किया गया। उसमें डॉ. राधाकृष्णन् (उस समय वह यूनेस्को के अध्यक्ष थे), डॉ. राजेन्द्र प्रसाद, जयप्रकाश नारायण, रफी अहमद किदवई, प्रो. डी.पी. मुखर्जी, प्रो. एस.के. जॉर्ज, प्रो. दाँतेवाला, प्रो. वाडिया और डॉ. अमरनाथ झा आदि मान्यवर थे। जयप्रकाशजी ने इस संगठन-कार्य में विशेष ध्यान दिया था; क्योंकि बिहार के विद्यार्थी आंदोलन के बारे में उन्हें चिन्ता थी। 'नेशनल यूनियन ऑफ स्टूडेण्ट्स' का प्रथम अधिवेशन सितंबर 1950 में मुम्बई के ब्रेबॉर्न स्टेडियम में हुआ था। इस अधिवेशन के उद्घाटन के लिए एक के बदले दो अतिथियों को बुलाया गया था। कांग्रेस से संबंधित छात्र चाहते थे कि पं. जवाहरलालजी उद्घाटन करें और समाजवादी विचारों के विद्यार्थियों का आग्रह जयप्रकाशजी के लिए था। पक्षनिरपेक्ष विद्यार्थी संगठन स्थापित करनेवाले अपने राजनीतिक दल और नेता को भूलना नहीं चाहते थे। दोनों में एकमत न होने से अंत में समझौता करके दोनों को बुलाया गया। उस समय जयप्रकाशजी ने भ्रष्टाचार पर हमला किया। उनके मतानुसार उस समय यानी 1950 में बिहार में लग्न-विवाह के बाजार में प्राध्यापक, डॉक्टर, न्यायाधीश, इनसे बढ़कर पुलिस अधिकारी, महसूल विभाग के नौकर, इनकी 'वर' के नाते ज्यादा माँग थी। दहेज के बाजार में उनका भाव भी बढ़ा-चढ़ा था, क्योंकि उनकी 'ऊपर की कमाई' वेतन से कई गुना ज्यादा थी। और वे निर्लज्जता से वह कमाई कितनी है, इसे विवाह के निश्चय के समय बताते थे। परीक्षा के अवैध मार्ग, बिना टिकट रेल प्रवास करने की प्रवृत्ति के विरोध में भी उन्होंने आवाज उठायी थी। इतना ही नहीं, विद्यार्थियों को अपने पिताजी और परिवारवालों के भ्रष्टाचार के विरोध में भी आवाज उठानी चाहिए, ऐसा आह्वान भी उन्होंने किया था। इतना ही नहीं, 'जन्म' नाम के 'बायलॉजिकल एक्सीडेन्ट' के कारण जो जन्माश्रित सत्ता या प्रतिष्ठा तथा सम्पत्ति पर अधिकार मिलता है, उस पर का भी अधिकार या हक छोड़ देने की सलाह उन्होंने दी थी। हम सबने हाथ ऊपर उठाकर उनके साथ वैसा संकल्प भी किया था, जो वातावरण तथा भावना का परिणाम था। बाद में हम यह समझ गये कि संकल्प करने होते हैं; लेकिन उन्हें पालना ही चाहिए, ऐसा कभी भी माना नहीं जाता। पक्ष (दल) रहित विद्यार्थी संगठन स्थापित करने हम इकट्ठा हुए थे। किन्तु दलनिष्ठा ही हमें एकजुट करती थी। उसी आधार पर उस संगठन के जुनाव हुए। इस प्रकार पक्ष-निरपेक्षता धुल गयी। पक्षाभिमान बढ़ा-चढ़ा सिद्ध हुआ और उद्घाटित अधिवेशन ही समान अधिवेशन ठहरा, क्योंकि अंततः विद्यार्थियों के प्रश्नों से बढ़कर पक्षनिष्ठा, दल के नेता और राजनीतिक दल ही महत्त्व के ठहरे। विद्यार्थी आंदोलन का यह खेदजनक अंत हुआ। यही भूमिका परम्परा से आज के विद्यार्थी संगठन भी चला रहे हैं। जो बोया, वही उगा और पाया। आज भी दुर्भाग्य से युवकों और विद्यार्थियों के सामने, हम जयप्रकाशजी की सम्पूर्ण क्रांति की या नवनिर्माण की भूमिका उपस्थित करने में या उसे प्राणवान् बनाने में पहल भी नहीं कर सके। यही असल में चिन्तन और मनन का विषय है। 'स्वराज्य' की परिभाषा 'स्व' पर राज्य, यह है और उसकी शुरुआत 'स्व' यानी 'स्वयं' से होती है, यह भी हम उन्हें नहीं समझा सकें।

लेकिन क्रांतिकारियों की यह विशेषता होती है कि वे प्रतिकुल परिस्थिति में भी अनुकूलता खोजते हैं। उन्हें पर्यायी राजनीति के बदले राजनीति का ही पर्याय खोजने की आकांक्षा होती है। राजनीतिक 'स्वतंत्रता' तथा 'स्वराज्य' या मुक्ति, ये भिन्न अर्थी और भिन्न धर्मी शब्द हैं। हर प्रकार की यानी राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक गुलामी से सम्पूर्ण मुक्ति मिले, ये जयप्रकाशजी की सम्पूर्ण क्रांति के आयाम थे। उसके लिए उनका सबसे अधिक विश्वास 'युवक' और विद्यार्थियों पर ही था। उनकी यह भावना थी कि युवक अन्याय, भ्रष्टाचार, अत्याचार किसी भी हालत में नहीं सह सकेंगे। इसीलिए शायद यूनेस्को के डायरेक्टर जनरल ने दो पीढ़ियों के अंतर को विशद करते हुए कहा था कि—

"The gulf between young and adult seems to be growing every day, not only with university but with society as a whole. With their needs for absolutes, the young are less than ever able to tolerate injustices and disorder of this world." (युवा और वयप्राप्त लोगों के बीच की खाई दिन-ब-दिन बढ़ती जा रही है, ऐसा केवल विश्वविद्यालय के संदर्भ में नहीं, अपितु कुल मिलाकर पूरे समाज के संदर्भ में हो रहा है। पूर्णताओं की दरकार के चलते, आज का युवा इस संसार में होने वाले अन्याय को, इसकी अव्यवस्था को सहन करने में आज जितना असहिष्णु है, पहले कभी नहीं था।)

अन्याय सहने की क्षमता और उसे नकारने की भूमिका इनमें जो अंतर है, वही दो पीढ़ियों में का अंतर है। और यह दिल्ली में अभी-अभी जो बलात्कार का कांड हुआ, जिसे 'निर्भया बलात्कार कांड' के नाम से जाना जाता है, उस समय युवाशक्ति का जो उद्रेक हुआ या 2014 के चुनाव में जिसका दर्शन हुआ, उससे आज भी युवकों से आशा की जा सकती है। और, इसीलिए शायद जयप्रकाशजी का युवकों पर सबसे अधिक विश्वास था। और मेरी दृष्टि से यही आशा की किरण है। क्रांति का यक्षप्रश्न यह है कि जिसे क्रांति की आवश्यकता है, वह अगली पीढ़ी तथा पददलित, शोषित और परिवंचित मनुष्य क्रांति का अधिष्ठाता और अनुष्ठाता कैसे बने? लोकमान्य से लेकर लोकनायक

तक सबकी यही उत्कंठा रही है, यही खोज रही है। जयप्रकाश के आंदोलन में एक सीमा तक इस पद्धति का आविष्कार हुआ। परन्तु उस पर प्रयोग अब तक उसके किनारे तक भी नहीं पहुँच सके हैं। क्रांति की जिसे आवश्यकता है, उसमें आकांक्षा भी नहीं जगी है, प्रेरणा तो दूर रही। इसलिए लोगों के पराक्रम से क्रांति करने के बारे में हमें अन्तर्मुख बनकर चिन्तन और संशोधन करना चाहिए और उस दिशा में कदम उठाने चाहिए। लेकिन इसकी शुरुआत अपने आप से और अपनी संस्था से होनी चाहिए। यही तो सम्पूर्ण क्रांति का प्रथम तथा अंतिम चरण है। और उसके सिवा सम्पूर्ण क्रांति के लिए अन्य पर्याय भी नहीं है। ❑

सम्पूर्ण क्रांति दिवस पर अध्यक्ष का संदेश

❑ **महादेव विद्रोही**

सन् 1974 का नारा था—'सम्पूर्ण क्रांति अब नारा है, भावी इतिहास हमारा है।' जेपी को सम्पूर्ण क्रांति जमीन पर उतारने का मौकान नहीं मिला। जेपी को गये 37 वर्ष होने को हैं। अब यह जिम्मेवारी सम्पूर्ण क्रांति के सैनिकों के कंधों पर है। सम्पूर्ण क्रांति सिर्फ सत्ता-परिवर्तन नहीं है। जब मूल्यों में और संबंधों में परिवर्तन होता है तब क्रांति होती है। इसके लिए एक जीवन भी कम पड़नेवाला है। इसलिए आज का नारा है—

सम्पूर्ण क्रांति है लक्ष्य हमारा, अर्पित करेंगे जीवन हमारा सारा।

सत्ता-परिवर्तन आसान है पर मूल्यों और संबंध में परिवर्तन कठिन कार्य है क्योंकि इसमें अपनों से तथा अपने आप से संघर्ष करना पड़ता है और बदले में उसे कुछ भी नहीं मिलता है।

आजादी के आन्दोलन के दिनों में किसी ने श्री धीरेन दा (श्री धीरेन्द्र मजूमदार) से पूछा—जो नौजवान अपना पूरा समय चरखा संघ (आजादी के अन्दोलन का एक संगठन जो बाद में सर्व सेवा संघ में विलीन हो गया) को समर्पित करेंगे उन्हें क्या मिलेगा?

धीरेन दा का उत्तर था—''उनको वही मिलेगा जो इतिहास में हमेशा क्रांतिकारियों को मिला करता है। उनको तकलीफ मिलेगी, समाज की उपेक्षा, उपहास, विरोध और शायद दमन भी मिलेगा। वे कभी भूख से मरेंगे, कभी रोग से।

पद्धति-परिवर्तन की क्रांति में उसके रूपान्तर के कारण जिनको नुकसान पहुँचेगा वे स्वार्थवश आपका विरोध करेंगे और जिनको फायदा होगा वे भी खिलाफ रहेंगे—अज्ञानता, रूढ़िवाद और बेहोशी के कारण। इसलिए हो सकता है कि ''जब आप भूख या बीमारी से मरने लगें तो आपके आस-पास कफन देनेवाला कोई न मिले।''

यह उक्ति आज सम्पूर्ण क्रांति के सैनिकों पर भी शत प्रतिशत लागू होती है।

दोस्तों, जेपी का लक्ष्य था—दलविहीन लोकतंत्र। पर हमारा लोकतंत्र आज दलों के कारागार में कैद है और जनता को मात्र वोट देनेवाला यंत्र मान लिया गया है। सहभागी लोकतंत्र का तो मानो मजाक ही उड़ाया जा रहा है।

सन् 74-75 में शासन जितना निरंकुश था, आज दिल्ली का शासन उससे भी ज्यादा निरंकुश और अधिनायकवादी हो गया है। शासन के गलत कदमों का विरोध करनेवालों को या तो राष्ट्रद्रोही घोषित किया जाता है या नक्सली। लगता है सत्तारूढ़ पार्टी जुदा राय रखनेवालों के लिए इस देश में कोई जगह नहीं रह गयी है। सारे विरोधियों को पाकिस्तान भेजने की घोषणा भाजपा के सिपहसालारों द्वारा बार-बार होती रहती है और प्रधानमंत्री उसका मौन समर्थन करते रहते हैं।

छुआछूत पहले से कम हुई है पर जातिवाद पहले से ज्यादा मजबूत और आक्रामक हो गया है। रूढ़िवाद और अंधविश्वासों ने भारत को अपना गुलाम ही बना लिया है।

मुझे याद है जब जेपी ने जाति और जाति के प्रतीकों को तोड़ने, तिलक-दहेज छोड़ने की बात कही तो उन पर चप्पल फेंका गया था।

दोस्तों, इस विषम परिस्थिति में भी हमें रुकना नहीं है, झुकना नहीं है। क्रांति की फौज में अधिक से अधिक युवाओं एवं महिलाओं को जोड़ते हुए कदम बढ़ाते रहना है।

आज जब परिस्थिति इतनी विकराल है तब सभी सहधर्मा मित्रों, संगठनों एवं समूहों से भी हमारी विनम्र अपील है कि छोटे-मोटे मतभेदों एवं विवादों को भूलकर नये समाज के निर्माण में संयुक्त शक्ति लगायें। ❑

क्रांति की खोज-यात्रा

जयप्रकाशजी का पूरा जीवन क्रांति की एक अखंड खोज-यात्रा के समान था। स्वयं उन्होंने भी अपने को 'क्रांति-शोधक' कहा है। सन् 1921 में 19 साल की उमर में उन्हें जीवन में क्रांति का एक ध्रुवतारा दिखायी पड़ गया। उस ध्रुवतारे पर ही अपनी अविचल दृष्टि गड़ाकर उन्होंने अपनी पूरी जीवन-यात्रा चलायी। वह ध्रुवतारा था, स्वतंत्रता, देश की स्वतंत्रता, मनुष्य की स्वतंत्रता, मानव व्यक्तित्व की, विचार की और आत्मा की स्वतंत्रता, सब प्रकार के बंधनों से मानव-मात्र की मुक्ति। जयप्रकाशजी के हृदय पर स्वतंत्रता की और मानव-मुक्ति की एक अमिट मुद्रा अंकित हो चुकी थी। जीवन-भर उनकी यही खोज चली कि यह स्वतंत्रता किस प्रकार सिद्ध की जाए, मानव-मुक्ति के लक्ष्य तक किस रास्ते से पहुँचा जाए?

इस खोज के लिए उनकी लगन इतनी अधिक तीव्र थी कि उसके सामने दूसरी-तीसरी सारी बातें बिलकुल गौण हो गयी थीं। उसकी तुलना में सत्ता, सम्पत्ति, लोकप्रियता आदि बातें भी उन्हें तुच्छ-सी लगने लगी थीं। जयप्रकाशजी को इन सब बाह्य वस्तुओं का त्याग करना नहीं पड़ा। खोज-संबंधी उनकी तीव्रता के कारण ये सब चीजें अपने आप ही झड़ पड़ीं।

उनकी यह खोज समाज-विज्ञान के क्षेत्र की खोज थी। वे निरंतर इस बात की खोज में लगे रहे कि मनुष्य की और समाज की स्थिति सुधारने के सच्चे उपाय क्या हैं? वे एक शोधक के रूप में, सामाजिक विज्ञान के ज्ञाता के रूप में, इसके लिए प्रयोग करते रहे, अनुभव लेते रहे, परिणामों को तौलते रहे और निष्कर्ष निकालते रहे। वैज्ञानिक कभी किसी 'थियरी' से चिपक कर नहीं रहता। इसी कारण जयप्रकाशजी भी किसी वाद या सिद्धांत से जुड़कर नहीं रहे। अपने प्रयोगों के आधार पर उनके विचार बदलते रहे, विकसित होते रहे, क्रांतिनिष्ठा उनकी बराबर बनी रही। यह क्रांति भी आखिर तो मनुष्य के लिए ही थी। अतएव उनकी दृष्टि में मनुष्य ही मुख्य बना रहा। जयप्रकाशजी का 'कमिटमेंट', उनकी प्रतिबद्धता, मनुष्य के प्रति थी, किसी वाद, सिद्धांत या विचार के प्रति नहीं। वे निरंतर मनुष्य की उन्नति के ही उपाय खोजते रहे। भारत की स्वतंत्रता से लेकर सम्पूर्ण क्रांति तक की जयप्रकाशजी की खोज-यात्रा मानव-मुक्ति, मानव-कल्याण और मानव के परिपूर्ण विकास के लिए आवश्यक उपायों की खोज के लिए ही थी।

लगभग छह दशकों तक चली जयप्रकाशजी की इस खोज-यात्रा का एक सिंहावलोकन कर लेना यहाँ आवश्यक लग रहा है। इस खोज के चलते जो तथ्य सामने आए और अंत में जो निष्कर्ष निकले, वे मानव-कल्याण के लिए प्रयत्न करनेवाले सब लोगों के लिए उपयोगी सिद्ध होंगे। इस सिंहावलोकन के साथ ही गांधी, विनोबा और जयप्रकाश की क्रांति-संबंधी कल्पना के विकास-क्रम को एक सिलसिले के साथ देख लेना होगा। समूची वस्तु का विकास होते-होते आज वह विकास कहाँ तक पहुँचा है, उसके कुल चिट्ठे को समझ लेना आगे की यात्रा के लिए उपयोगी होगा।

क्रांति का सिपाही कौन बनेगा?

जयप्रकाशजी शुरू से ही इस खोज में लगे रहे कि क्रांति का सिपाही कौन बनेगा? इस विषय में जयप्रकाशजी का अपना विश्वास यह था कि भारत के समान कृषि-प्रधान समाज में मजदूर के बदले किसान ही आगे बढ़कर इस क्रांति में हाथ बँटायेगा। अपने अन्तिम वर्षों में उन्होंने विद्यार्थियों और नौजवानों का आवाहन किया था, और युवा-शक्ति को सम्पूर्ण क्रांति की रेलगाड़ी का इंजन कहा था। नौजवानों के साथ जयप्रकाशजी का स्थायी संबंध विशेष रूप से बना रहा। अंत में उन्होंने एक पक्षविहीन युवक-संगठन खड़ा करने का भी प्रयत्न किया था।

जिस आंदोलन में नये खून को आकर्षित करने की शक्ति नहीं रहती, वह जीवंत नहीं रह सकता। अतएव किसी भी क्रांति के लिए नौजवानों का आवाहन करते रहना अनिवार्य ही हो जाता है। लेकिन सिर्फ नौजवान होना काफी नहीं। क्रांति के सिपाही बनने के लिए उस क्रांति की विचारधारा का प्रशिक्षण प्राप्त करना और उसके प्रति निष्ठा रखना भी अनिवार्य होता है। इसके अभाव में स्थिति 'चार दिन की चाँदनी'-सी बन कर रह जाती है। उत्साह की एक लहर उठती है, और फिर वह शांत हो जाती है।

बिहार आंदोलन के अनुभव के बाद दिसंबर, 1977 में श्री ब्रह्मानंद के साथ की बातचीत में जयप्रकाशजी ने कहा था : ''मैंने विद्यार्थियों के आंदोलन से बहुत आशा रखी थी। परंतु विद्यार्थी समुदाय के स्वभाव में ही यह चीज नहीं है। विद्यार्थियों का समुदाय भी एक बहती हुई नदी के समान है। आज का विद्यार्थी आनेवाले कल का विद्यार्थी नहीं रहता। मैं इस बारे में बराबर सोचता रहता हूँ कि इस क्रांति का अग्रदूत कौन बन सकता है? और अब मैं इस नतीजे पर पहुँचा हूँ कि सर्वोदय के कार्यकर्ताओं का क्रांतिकारी समुदाय ही इस भूमिका में काम कर सकता है। सम्पूर्ण क्रांति के लिए सर्वोदय के कार्यकर्ता एक गणमान्य शक्ति का काम कर सकते हैं।''

क्रांति के लिए दर्शन और विभूतिमत्त्व की आवश्यकता

मतलब यह कि किसी भी क्रांति के लिए उसकी विचारधारा से प्रेरित एक 'कैडर'

की, एक संगठित और अनुशासित दल की आवश्यकता होती है। उसके बिना क्रांति नहीं हो सकती। डॉक्टर हरिदेव शर्मा के साथ की अपनी बातचीत में जयप्रकाशजी ने जो कहा था, वह भी याद रखने लायक है : ''सब कुछ लोगों के ऊपर ही छोड़ देने से कभी क्रांति नहीं होगी। लेनिन ने भी कहा था कि सब मजदूरों पर छोड़ा होता, तो 'ट्रेड यूनियन मूवमेंट' से आगे वे जा नहीं पाते, और साम्यवादी क्रांति कभी हो नहीं पाती। क्रांतिकारियों को कोई 'आइडियालॉजी', कोई कल्पना-चित्र, देना पड़ता है।''

इसी में से नेतृत्व का प्रश्न भी खड़ा होता है। जनवरी 1979 की अपनी बातचीत में आस्टरगार्ड ने पूछा था : ''क्या आप यह महसूस नहीं करते कि गांधी की पद्धति के अनुसार काम करने के लिए हमेशा किसी जे.पी. की अथवा किसी गांधी की आवश्यकता बनी रहेगी? यह पद्धति किसी विशिष्ट व्यक्ति पर कब तक निर्भर करेगी?''

इसके जवाब में जयप्रकाशजी ने बिलकुल साफ-साफ शब्दों में कह दिया था : ''देखिए, मैं तो निश्चित रूप से ही कोई गांधी हूँ नहीं। परंतु यह पद्धति अवश्य ही किसी गांधी की अपेक्षा रखती है—किसी ऐसे व्यक्ति की अपेक्षा, जिसमें कुछ खास विशेषताएँ हों, जो नैतिक और आध्यात्मिक दृष्टि से अमुक एक ऊँचाई तक पहुँचा हो। और, मैं तो हिंसक क्रांति के लिए भी यही बात मानता हूँ। लेनिन में कुछ गुण थे, और मैं मानता हूँ कि उन गुणों के बिना उनके लिए क्रांति करना सम्भव न होता।''

जयप्रकाश ने एक बार कहा था : ''पश्चिम के देशों के अधिकतर आंदोलन मनुष्य की उपभोग संबंधी अधिक-से-अधिक भूख के साथ जुड़े हुए थे। जबकि हमारे आंदोलनों का रुख इससे बिलकुल भिन्न रहा है। हम अपनी जनता में एक नयी जीवन-दृष्टि तैयार करने के लिए कड़ा परिश्रम करते हैं।''

इसी कारण श्री दादा धर्माधिकारी कहा करते हैं कि ऐसे आंदोलनों के नेतृत्व के लिए विभूतिमत्त्व की आवश्यकता होती है। दादा ने विभूति की व्याख्या यों की है : ''जो-जो ऊर्जित है, उन्नत है, उसे हमने विभूति माना है। साधारण आदमी जिसे असंभव समझता है, उसे जो थोड़ी मुश्किल के साथ कर लेता है, वह 'एक्सपर्ट' है, निष्णात है, निपुण है। लेकिन निपुण मनुष्य जिसे असम्भव समझता है, उसे जो सम्भव बनाना चाहता है, उसका नाम विभूति है। वह 'प्रैक्टिकल', यानी व्यावहारिक नहीं होता, और इसी में उसका विभूतिमत्त्व है। वह मानो आसमान को ही छूना चाहता है।''

क्रांति के नेतृत्व की निराली नीति

ऐसा नेतृत्व लोकतंत्र की प्रचलित रीति के अनुसार काम नहीं करता। वह अपने निराले ढंग से काम करता है। सन् 1956 में एक बार विनोबाजी ने कहा था : ''मेरी एक भूमिका है। व्यावहारिक बातों में जहाँ, जिससे 'कंसल्ट' करना जरूरी है, मैं करता हूँ। लेकिन जिस बारे में मेरा अपना एक स्वतंत्र दर्शन होता है, उस बारे में मैं क्यों किसी को पूछूँ? उदाहरण के लिए, मुझे तो दर्शन ही हुआ है कि जमीन पर किसी का अधिकार नहीं है। दुनिया से यह बात कहने के लिए मुझे किसी को पूछने की जरूरत नहीं है।''

शुरू से ही जयप्रकाशजी की यह वृत्ति रही कि आंदोलनों में ऐसे नेतृत्व को स्वीकार करके चलना चाहिए। ग्रामस्वराज्य आंदोलन में वे स्वयं एक अनुशासित सैनिक की तरह ही विनोबा के नेतृत्व में काम करते रहे। और जब उन्होंने बिहार के आंदोलन का नेतृत्व स्वीकार किया, तो दूसरों से भी उन्होंने वैसी ही अपेक्षा रखी। उन्होंने विद्यार्थियों से कह दिया था कि मुझे आगे करके कोई पीछे से मुझको 'डिक्टेट' करता रहे, राह दिखाता रहे, तो ऐसा नेतृत्व मुझे नहीं चाहिए। हाँ, मैं बात सबकी सुनूँगा, चर्चा सबके साथ करूँगा, परन्तु अंतिम निर्णय तो मेरा ही होगा।

श्री राममूर्ति ने अपने एक लेख में बिहार-आंदोलन में जयप्रकाशजी के नेतृत्व की चर्चा की है। विनोबाजी के नेतृत्व के दिनों में भी 'डिवाइन विजडम' (दिव्य समझदारी) और 'कलेक्टिव विजडम' (सामूहिक समझदारी) की चर्चा चला करती थी। ऐसे नेता अपनी अंतःप्रेरणा के अनुसार बरताव करते हैं। इसके बारे में जयप्रकाशजी के विचार जानने योग्य हैं। 15 सितंबर, 1978 की एक बातचीत में उन्होंने कहा :

''मैं यह मानता हूँ कि सामूहिक नेतृत्व की बात 'वदतो व्याघात' है। नेतृत्व के मूल स्वभाव में ही यह बात निहित है कि केन्द्र में एक व्यक्ति हो। आवश्यक अध्ययन, चर्चा आदि के आधार पर भले ही कुछ लोग इकट्ठा होकर कोई सामूहिक निर्णय करें। परंतु अंतिम निर्णय तो नेता को ही करना चाहिए। अब्राहम लिंकन ने भी एक बार कहा था कि कई बार बहुमत की राय की अवगणना करके भी नेता को निर्णय करना पड़ता है।''

यह व्यक्ति-पूजा नहीं है, बल्कि आंदोलन की प्रक्रिया की एक अनिवार्यता है। श्री दादा धर्माधिकारी ने इस बात को यों समझाया है : ''इसमें समझने की बात यह है कि कार्यक्रम के लिए नेता चाहिए, विचार के लिए नेता की जरूरत नहीं। विचार का नियम यह है कि उसमें एक से दो सिरे भले, और दो की अपेक्षा बीस और भी भले। परन्तु क्रिया का नियम इससे उलटा है। उसमें दो सौ की तुलना में बीस अच्छे, बीस से दो अच्छे, और दो से एक अच्छा। विचार करना हो, तो उसके लिए किसी नेता की आवश्यकता नहीं रहती। किन्तु एक बार विचार हो चुकने के बाद उस पर अमल करने के लिए तो एक ही नेता की जरूरत रहती है। नेता जो निर्णय करता है, वह विचार के आधार पर नहीं करता, अंतःप्रेरणा से करता है। ऐसे नेता समय-समय पर आते रहते हैं। नेता बनाए नहीं जा सकते। वे →

कौन पूरा करेगा सम्पूर्ण क्रांति का मेरा सपना?

❑ जयप्रकाश नारायण

''1974 के आंदोलन के पीछे एक बहुत दूर का सपना मैंने देखा था। एक ऐसी क्रांति का दर्शन कराता था, जो सारे समाज को सम्पूर्ण रूप से बदल सकती थी। उसका नारा तो था सम्पूर्ण क्रांति का। सारे जीवन को बदलने की यह बात थी। व्यक्ति और समाज के जीवन के हर पहलू को बदलने की शादी, ब्याह, जाति-पाँति, राजनीति, अर्थनीति, सभी के बदलने की और एक नया समाज कायम करने की वह चाह थी।''

''समाज में ऐसा आमूल परिवर्तन सरकार द्वारा कभी नहीं हो सकता और सत्ता के स्थानों पर बैठे हुए नेताओं के भाषणों या आह्वानों से भी नहीं हो सकता। ऐसा परिवर्तन मात्र उन्हीं लोकनेताओं और लोकसेवकों द्वारा ही संभव हो सकता है जिन्होंने स्वेच्छा से, खुशी से अपने को सत्ता-स्थानों से दूर रखा हो और लोगों तक जिनकी पहुँच हो यानी लोगों के बीच में रहकर जिन्होंने काम किया है। केवल सरकार से सब हो जायेगा और सरकारी योजनाएँ बजट आदि के द्वारा परिवर्तन आ जायेगा, ऐसा मानकर अभी भी हम चलेंगे, तब तो फिर हम भटकते ही रहेंगे। पूरी जनता की शक्ति देश के नवनिर्माण के कार्य में लगे, इस दिशा में हमें सतत प्रयास करने होंगे। स्त्री-पुरुष, बच्चे-बूढ़े, छात्र और शिक्षक, सैनिक और स्वयंसेवक सभी को इसमें शामिल होना चाहिए। लोगों को प्रोत्साहित करना चाहिए। स्वावलम्बन और आपसी सहयोग की रणभेरी देशभर में गूँज उठनी चाहिए। इसके अलावा अन्य किसी तरह से देश का नवनिर्माण शक्य नहीं हो सकेगा।''

निःस्पृह लोक-सेवकों की आवश्यकता

''सम्पूर्ण क्रांति के लिए हमें ऐसे लोगों की आवश्यकता है, जो जनता के बीच जाकर निःस्पृह भाव से काम करें और जनता को जगायें। इस काम में शासन भी जितनी मदद कर सकता है, उतनी करे। लेकिन हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि मुख्य रूप से यह काम कार्यकर्त्ताओं का है, क्रांति में विश्वास रखनेवाले नौजवानों का है और जनता का है। जन-क्रांति जनता के ही सहयोग से और उसी के हाथों होती है। सम्पूर्ण क्रांति सरकारी शक्ति से नहीं, जनता की ही शक्ति से हो सकती है।''

क्या नौजवानों को आराम की जिन्दगी चाहिए?

''हमारे देश के नौजवानों पर यह एक बहुत बड़ी जिम्मेदारी आयी है कि वे इस क्रांति को सफल बनाने के लिए अपने प्राणों की बाजी लगा दें। अंग्रेजी राज्य के दिनों में जोशीले नौजवान सरकारी नौकरियों में जाने से इनकार कर देते थे। वे बड़ी-बड़ी तनख्वाहों और ऊँचे-ऊँचे पदों के मोह को ठुकरा देते थे। लेकिन आज तो हमारे नौजवानों के सामने नौकरी का ही एक मुख्य आकर्षण है। फिर भी उनमें से जो अधिक भावनाशक्ति और कम स्वार्थी हों, उन्हें तो यह समझना चाहिए कि सरकारी काम के जरिये राष्ट्र का निर्माण नहीं हो सकता। जिनके दिलों में राजनीतिक महत्त्वाकांक्षाएँ हैं, उन्हें भी समझना चाहिए कि विधान-सभाएँ और सरकारें राष्ट्र का निर्माण नहीं कर सकतीं। इस काम के लिए तो जनता को ही जगाना होगा। इसके लिए सबसे अधिक महत्त्व का काम यह है कि लोगों के पास पहुँचा जाये, उनके साथ रहा जाये और आत्मनिर्भर बनने में उनकी मदद की जाये।''

''करोड़ों की आबादीवाले अपने इस देश में इस काम के लिए क्या कुछ हजार भाई-बहन ऐसे नहीं निकलेंगे, जो इतने स्वार्थत्यागी, इतने साहसी और इतने दूरदर्शी हों कि अपने-आप को इस बुनियादी काम में खपा दें? नौजवान अपने-अपने दिल टटोलें। क्या उन्हें आराम का सुकुमार जीवन जीना ही पसन्द है? क्या वे सामाजिक और राजनीतिक होड़ाहोड़ी की ही दौड़ में शामिल होना चाहते हैं? जो इस दौड़ में शामिल होते हैं, वे आखिर तो जनता की पीठ पर ही सवार होते हैं। मुझे आशा है कि इस देश में ऐसे बहुतेरे नौजवान हैं जो एक उदात्त ध्येय के लिए कष्टपूर्ण और संकटों से भरा जीवन जीने के लिए हँसते-हँसते तैयार हों। हमारे देश की आध्यात्मिक विरासत भी आज ऐसी एक अभिनव क्रांति के लिए हमें चुनौती दे रही है।'' ❑

→

चुने नहीं जा सकते। ऐसा नेता एक बिलकुल ही अलग मिट्टी का बना होता है। उसका द्रव्य ही अलग होता है। लोग खुद होकर उसकी शरण में जाते हैं।''

क्रांति कार्य के नेतृत्व के बारे में जयप्रकाशजी के विचार ऐसे थे। इसी सिलसिले में विनोबाजी ने नेतृत्व-निरसन, गण-सेवकत्व, सर्वसम्मति आदि की दिशा में जो प्रयोग और प्रयत्न किए, वे भी विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इन प्रक्रियाओं को आगे बढ़ाना होगा। इन्हें परिमार्जित और पुष्ट करना पड़ेगा। विनोबाजी ने यह सारा काम समाज-विज्ञान के प्रयोग के रूप में, सामाजिक कामों के विज्ञान की खोज के रूप में किया था और इस काम में जयप्रकाशजी भी उनके साथ ही थे।

(जयप्रकाश : जीवन-यात्रा)

सम्पूर्ण क्रांति आंदोलन के सहभागी रामधीरज भाई से प्रो. (डॉ.) योगेन्द्र यादव की बेबाक बातचीत

प्रो. योगेन्द्र : भाईजी! सम्पूर्ण क्रांति क्या है? इस बारे में बताने की कृपा करें।

रामधीरज भाई : दरअसल जयप्रकाश नारायण की 5 जून, 1975 को पटना के गांधी मैदान में जो सभा हुई थी, उसमें ही जयप्रकाशजी ने सबसे पहले सम्पूर्ण क्रांति शब्द का प्रयोग किया था।

प्रो. योगेन्द्र : सम्पूर्ण क्रांति का आशय क्या है?

रामधीरज भाई : सम्पूर्ण क्रांति का आशय सम्पूर्ण व्यवस्था परिवर्तन है, इसको सप्त क्रांति भी कह सकते हैं।

प्रो. योगेन्द्र : इसे सप्त क्रांति क्यों कह सकते हैं?

रामधीरज भाई : अपने भाषण में जयप्रकाश ने सात प्रकार के बदलाव का उल्लेख किया था। राजनैतिक परिवर्तन, सामाजिक परिवर्तन, आर्थिक परिवर्तन, शैक्षिक परिवर्तन, सांस्कृतिक परिवर्तन, आध्यात्मिक परिवर्तन।

प्रो. योगेन्द्र : क्या आपने उनके द्वारा आहूत क्रांति में भाग लिया?

रामधीरज भाई : हाँ।

प्रो. योगेन्द्र : कहाँ?

रामधीरज भाई : मुख्य रूप से इलाहाबाद में।

प्रो. योगेन्द्र : इलाहाबाद में सम्पूर्ण क्रांति का नेतृत्व किन-किन नेताओं ने किया?

रामधीरज भाई : हिंदी साहित्य की प्रमुख कवियत्री महादेवी वर्मा, बनवारीलाल शर्मा, डॉ. रघुवंश, आचार्य बंशीधर, सुरेश राम माते, इलाहाबाद की कमल गोविंदी आदि ने इलाहाबाद एवं उसके आस-पास के क्षेत्रों में सम्पूर्ण क्रांति आंदोलन का नेतृत्व किया।

प्रो. योगेन्द्र : क्या आपने भी इन्हीं नेताओं के नेतृत्व में काम किया?

रामधीरज भाई : जी हाँ, मुझे भी इन्हीं नेताओं के साथ जुड़ने का मौका मिला। इस आंदोलन में भाग लेने के लिए मैं महाराष्ट्र एवं दूसरे प्रदेश भी गया। भूमि आंदोलन, काशी के चर्चित आंदोलन में भाग लिया।

प्रो. योगेन्द्र : ये काशी का चर्चित आंदोलन क्या है?

रामधीरज भाई : काशी के एक मठ के पास 28 हजार एकड़ जमीन थी, जिस पर कई गाँव के लोग मजदूरी करते थे। उस जमीन को मजदूरों में बाँटने के लिए यह आंदोलन हुआ।

प्रो. योगेन्द्र : इस आंदोलन का नारा क्या था?

रामधीरज भाई : इस आंदोलन का नारा था—जो जमीन को जोते-बोये, सो जमीन का मालिक होवे।

प्रो. योगेन्द्र : अपने शुरुआती दौर में इस आंदोलन ने किन-किन प्रदेशों में अपनी सक्रिय भागीदारी की?

रामधीरज भाई : बिहार, महाराष्ट्र के धुलिया और असम में असम गण परिषद ने बहुत ही सक्रियता से काम किया।

प्रो. योगेन्द्र : धुलिया आंदोलन के स्वरूप एवं प्रकृति पर प्रकाश डालने की कृपा करें।

रामधीरज भाई : धुलिया का आंदोलन बेसिकली आदिवासियों का आंदोलन था। वहाँ जो जंगल की जमीन थी, उस पर आदिवासी खेती करते थे। तत्कालीन जंगल कानून के अनुसार उन्हें बेदखल कर दिया। उनकी जमीन दिलाने के लिए ही यह आंदोलन हुआ, जिसमें आदिवासियों ने बड़े उत्साह से भाग लिया। सरकार ने उनका दमन भी किया।

प्रो. योगेन्द्र : शिक्षा के क्षेत्र में सम्पूर्ण क्रांति के तहत किस प्रकार आंदोलन हुआ?

रामधीरज भाई : शिक्षा के क्षेत्र में एक बड़ा परिवर्तन लाने के लिए इस आंदोलन की शुरुआत की थी। उत्तर प्रदेश में पब्लिक स्कूल बड़ी तेजी से फल-फूल रहे थे। सरकार उन्हें बढ़ाने के लिए तमाम तरह की सहूलियत दे रही थी, जिसके कारण सरकारी स्कूलों में बच्चों की संख्या कम हो रही थी। इन्हीं सबका विरोध करने के लिए 30 अप्रैल, 1975 को लखनऊ के तालुक्केदार कॉलेज से एक पदयात्रा शुरू हुई, जो करीब 600 किलोमीटर की दूरी तय करके बरेली, मुरादाबाद होते हुए देहरादून के दून कॉलेज में समाप्त हुई।

प्रो. योगेन्द्र : इसके अलावा भी कोई विरोध यात्रा आप लोगों ने की?

रामधीरज भाई : दूसरी यात्रा किसानों के मुद्दे को लेकर लखनऊ से लेकर दिल्ली तक सम्पन्न हुई। किसान को न तो सम्मान मिल रहा था और न ही उसकी फसल का वाजिब दाम। उसकी आमदनी का आकलन किस प्रकार किया जाय, इसके लिए इन सरकारों द्वारा कोई भी प्रणली विकसित नहीं की जा रही थी। खाद, पानी और बीज के बढ़ते दामों ने उसकी कमर तोड़ दी थी। इस यात्रा को सफल बनाने के लिए छात्र युवा वाहिनी के जवानों ने गाँव-गाँव जाकर किसानों और मजदूरों से मिलते हुए इस यात्रा को अंजाम तक पहुँचाया और केंद्र सरकार को ज्ञापन दिया था।

प्रो. योगेन्द्र : सामाजिक बदलाव को लेकर सम्पूर्ण क्रांति के प्रणेता जयप्रकाश ने क्या नारा दिया?

रामधीरज भाई : सामाजिक बदलाव को लेकर जयप्रकाश ने कहा था—जनेऊ तोड़ो–जाति छोड़ो।

प्रो. योगेन्द्र : उन्होंने जाति-प्रथा को तोड़ने के लिए क्या किया?

रामधीरज भाई : जयप्रकाश ने सामाजिक बदलाव की पहल की। खासकर बिहार एवं

पूरे देश में राजनीति और सामाजिक ताने-बाने में जातियों का वर्चस्व साफ दिखाई देता था। जिसके कारण आंदोलन के तमाम नौजवान जातीय समूहों के हाथों का खिलौना बन गये थे। इससे चिंतित होकर जयप्रकाश ने कहा था—जब तक भारत ऊँच-नीच और जाति-पाँति से मुक्त नहीं होगा, तब सही मायने में सामाजिक बदलाव नहीं आयेगा।

प्रो. योगेन्द्र : क्या जयप्रकाश ने दहेज प्रथा के विरूद्ध भी आंदोलन किया?

रामधीरज भाई : जी हाँ। दहेज प्रथा की जड़ों पर जितना तेज प्रहार जयप्रकाश ने किया, शायद ही उतना तेज प्रहार किसी और राजनेता ने किया होगा। वे अपनी अधिकांश सभाओं में दहेज का सवाल उठाये कि ये जो लड़कों के बिकने का समाज में कार्यक्रम चल रहा है, वह तुरंत बंद होना चाहिए। शादी कोई सौदा नहीं है। जीवन को व्यवस्थित चलाने का, जीवन में सामंजस्य स्थापित करने का व समाज में परिवर्तन लाने का माध्यम है। इसलिए नौजवानों को दहेज और जाति छोड़कर सामाजिक परिवर्तन के काम में आना चाहिए। अपने इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए उन्होंने छात्र युवा वाहिनी संगठन का गठन किया था।

प्रो. योगेन्द्र : जयप्रकाश ने तरुण शांति सेना का गठन अपने किस उद्देश्य की पूर्ति के लिए किया था? समझाने की कृपा करें।

रामधीरज भाई : तरुण शांति सेना का गठन जयप्रकाशजी ने बिहार में पड़नेवाले अकाल में काम करने के लिए किया था। लेकिन बाद में जब सम्पूर्ण क्रांति की कल्पना उनके मन में आयी तो उन्होंने तरुण शांति सेना का छात्र युवा संघर्ष वाहिनी में विलय कर दिया। छात्र युवा संघर्ष वाहिनी बनी तो हम सभी उसमें शामिल हो गये।

प्रो. योगेन्द्र : छात्र युवा संघर्ष वाहिनी का पहला सम्मेलन क्यों नहीं हो पाया?

रामधीरज भाई : छात्र युवा संघर्ष वाहिनी का पहला सम्मेलन फैजाबाद में होना था, 29-30 जून, 1975 को। उसके पहले ही 26 जून, 1975 को इमरजेंसी लग गयी।

प्रो. योगेन्द्र : आपकी गिरफ्तारी कब हुई?

रामधीरज भाई : मैं अपने साथियों के साथ छात्र युवा संघर्ष वाहिनी के पहले सम्मेलन में भाग लेने के लिए निकलनेवाला था, मेरे साथियों को गिरफ्तार कर लिया। मैं फरार होने में सफल रहा। इसलिए मुझे इस समय गिरफ्तार नहीं किया जा सका। एक महीने बाद मुझे जुलाई में गिरफ्तार कर लिया गया।

प्रो. योगेन्द्र : आपको कहाँ से गिरफ्तार किया गया?

रामधीरज भाई : मुझे नैनी से गिरफ्तार किया गया। जब मैं नैनी रेलवे स्टेशन के समीप स्थित एक छोटे से ढाबे पर खाना खा रहा था। उसी समय मुझे पुलिस ने गिरफ्तार कर लिया।

प्रो. योगेन्द्र : फरारी के दौरान आप कहाँ-कहाँ रहे?

रामधीरज भाई : फरारी के दौरान मैं दिल्ली, कानपुर, इलाहाबाद, गाजियाबाद में छिपा रहा।

प्रो. योगेन्द्र : आप इलाहाबाद किसलिए आये थे?

रामधीरज भाई : आगे रणनीति बनाने के सिलसिले में इलाहाबाद आना हुआ। किन्तु दुर्भाग्य कि मैं गिरफ्तार हो गया।

प्रो. योगेन्द्र : आपको किसके तहत और कहाँ बंद किया गया?

रामधीरज भाई : पहले डी आई और फिर मीसा लगाकर नैनी सेन्ट्रल जेल में बंद कर दिया।

प्रो. योगेन्द्र : आप कितने महीने जेल में रहे?

रामधीरज भाई : 18 महीने।

प्रो. योगेन्द्र : जेल में आपका जीवन कैसा रहा?

रामधीरज भाई : दरअसल जेल में उस समय बड़ी भयावह स्थिति थी। शुरू के दिनों में तो सामान्य कैदियों के साथ मुझे रखा गया। लेकिन मीसा लगने के बाद राजनैतिक बंदियों के साथ दूसरे बैरक में ट्रांसफर कर दिया गया। यहाँ कठोर परिश्रम तो नहीं करना होता था। लेकिन इतना भयावह मंजर था कि आये दिन यह अफवाह उड़ती थी कि आज गैस छोड़ी जायेगी और हिटलर के गैस चेम्बर की तरह सारे लोग मार दिये जायेंगे। यह भी अफवाह उड़ती थी कि गोलियाँ चलाते हुए सेना या पुलिस के लोग घुसेंगे और सारे बंदियों को मार दिया जायेगा। उन्हीं दिनों कई राजनीतिक बंदियों की तबीयत खराब होने की वजह से पेरोलपर छोड़ दिया गया था, जिनकी बाद में मौत हो गयी थी। इसलिए भी ये चर्चाएँ गरम थीं।

प्रो. योगेन्द्र : जयप्रकाशजी के बारे में भी आप लोगों को खबरें मिलती थीं?

रामधीरज भाई : जी हाँ। हर कैदी के मन में यह कौतुहल रहता था कि वह सम्पूर्ण क्रांति के नेता जयप्रकाशजी के बारे में जानना चाहता था। उनके अस्वस्थ होने की खबर रोज मिलती थी। उनके भोजन में जहर मिलाने की भी चर्चा थी। इसलिए नैनी जेल के कैदियों के दिलों में यह बात घर कर गयी थी कि उनके भी भोजन में कोई रासायनिक पदार्थ मिलाया जा रहा है, जिसके कारण उनकी तबीयत खराब हो रही है। वहाँ भी कई लोगों का स्वास्थ्य खराब रहने लगा था। उस जेल का जो मंजर था, वह बहुत भयावह था। उससे अधिकांश लोग डरने लगे थे। किसी को भी जीवित रहने और बचने की आशा नहीं थी।

प्रो. योगेन्द्र : क्या इससे कई लोगों ने घबरा कर माफी माँग ली?

रामधीरज भाई : जी हाँ, कई साथी, जो दिल के कमजोर थे। जो जीना चाहते थे। जिनके पीछे तमाम पारिवारिक जिम्मेदारियाँ थीं या जिन लोगों की तबीयत खराब रहने लगी थी, उन लोगों ने माफी माँग ली और जेलों से उनकी रिहाई हो गयी।

प्रो. योगेन्द्र : आपकी रिहाई कब हुई?

रामधीरज भाई : 1977 के मार्च में मेरी रिहाई हुई।

प्रो. योगेन्द्र : क्या आपका जयप्रकाश से कभी मिलना हुआ?

रामधीरज भाई : जी हाँ, उनसे काफी मिलना हुआ। जब वे बिहार से उत्तर प्रदेश के दौरे पर आये तो सबसे पहले इलाहाबाद आये। यहाँ के पीडी पार्क में उनकी सभा हुई। महादेवी वर्मा के प्रयाग विद्यापीठ में युवकों का एक

सम्मेलन भी हुआ, जिसमें की नामचीन हस्तियाँ आयी थीं। जयप्रकाशजी भी थे। यहीं पर उनसे पहली मुलाकात हुई।

प्रो. योगेन्द्र : इसके बाद फिर कब और कहाँ मुलाकात हुई?

रामधीरज भाई : इसके बाद उत्तर प्रदेश के उनके इसी दौरे में बलिया, बनारस, मुगलसराय, मेरठ, मुजफ्फरनगर और फिर मध्य प्रदेश के मुरैना, जबलपुर में उनसे मुलाकात हुई।

प्रो. योगेन्द्र : इतनी ज्यादा मुलाकातें कैसे संभव हुईं?

रामधीरज भाई : मैं उनके अग्रिम दस्ते के रूप में रहता था।

प्रो. योगेन्द्र : आपको जयप्रकाशजी ने क्या-क्या जिम्मेदारी सौपी थी?

रामधीरज भाई : मुझे जयप्रकाशजी ने साहित्य प्रचार की जिम्मेदारी सौपी थी, जिसमें सम्पूर्ण क्रांति की किताब, इलाहाबाद से प्रकाशित होनेवाला सम्पूर्ण क्रांति का मुख पत्र नगर स्वराज को बाँटना होता था, जितनी भी सभाएँ होती थीं, उनमें इनके वितरण की व्यवस्था करनी पड़ती थी।

प्रो. योगेन्द्र : जयप्रकाशजी ने इस सम्बन्ध में आपको कोई निर्देश दे रखे थे?

रामधीरज भाई : उनसे जब भी चर्चा होती थी, एक तो वे कहते थे कि सामाजिक कार्यकर्ता को बहुत ही व्यवस्थित और वैज्ञानिक तरीके से लम्बी योजना बनाकर समर्पित भाव से सामाजिक कार्य करना चाहिए, क्योंकि जितनी बड़ी-बड़ी कॉर्पोरेट ताकतें हैं और राजनीतिक दल हैं, अपने-अपने संसाधनों से इस राज व्यवस्था को टिकाये हुए हैं। जिन लोगों को इस व्यवस्था में बदलाव लाना है, धैर्य, समझदारी, संजीदगी और वैज्ञानिक तैयारी के साथ इस काम में सतत लगे रहना होगा।

प्रो. योगेन्द्र : इसके अलावा जयप्रकाशजी ने और क्या निर्देश दिये?

रामधीरज भाई : जयप्रकाशजी दूसरी बात यह कहते थे कि हमें हर सवाल का जवाब समय से देने के बजाय जनता के बीच संवाद करके निकालना चाहिए। जनता की समस्या और जनता का हल, हम सबको तो केवल परिष्कृत करके एक क्रांतिकारी के नाते उसको जनता तक ले जाने का काम करना है।

प्रो. योगेन्द्र : क्या कोई तीसरी बात भी उन्होंने आप लोगों को बतायी है?

रामधीरज भाई : जी हाँ। तीसरी बात जिस पर वे बार-बार जोर देकर कहते थे कि जब तक इस देश के नौजवान डिग्री के मोह से मुक्त नहीं होंगे, तब तक समाज में बदलाव नहीं आयेगा। इस कारण वह अपने जीवन में बड़ा काम नहीं कर पायेगा और उसे अपने काम से संतुष्टि भी नहीं मिलेगी।

प्रो. योगेन्द्र : इसके अलावा भी उन्होंने आप लोगों से कोई अपेक्षा रख छोड़ी थी?

रामधीरज भाई : एक अंतिम बात वे और कहते थे कि इस देश में जो अलग-अलग जाति, धर्म, संप्रदाय और भाषा के लोग हैं, उनके बीच में हमें समन्वय और सामंजस्य स्थापित करके चलना होगा। लोकतंत्र में सबकी सहमति और सबका सहयोग लिये कोई आंदोलन खड़ा नहीं हो सकता। यदि यह विभाजन बढ़ता गया तो न देश बचेगा और न लोकतंत्र। यहाँ तक समाज भी नहीं बचेगा। लोकतंत्र का आधार ही सहयोग, सहकार और आपसी सामंजस्य है।

प्रो. योगेन्द्र : असहमति से प्रश्न पर जयप्रकाशजी के क्या निर्देश थे?

रामधीरज भाई : उनका कहना था कि जहाँ असहमति हो, वहाँ भी हमें सहमति बनाने की कोशिश करनी चाहिए और असहमति के बावजूद मिलकर काम करना चाहिए। तभी लोकतंत्र सफल होगा। लोकतांत्रिक मूल्यों के प्रति भी बहुत संजीदा होने की जरूरत है।

प्रो. योगेन्द्र : ग्राम पंचायत के सम्बन्ध में उनके क्या विचार थे?

रामधीरज भाई : गाँव की पंचायतों को लेकर वे बेहद संजीदा थे और कहते थे कि भारत के विकास की धुरी गाँव ही हो सकता है। जब गाँव के लोग आपस में बैठकर अपने संसाधनों से विकास के रास्ते पर चलेंगे, जिसे महात्मा गांधी ग्राम स्वराज, जयप्रकाश लोक स्वराज्य कहते थे। तभी सही मायने में विकास होगा।

प्रो. योगेन्द्र : अभी तक आप किन-किन संस्थाओं से जुड़े हुए हैं या जुड़े रहे हैं?

रामधीरज भाई : तरुण शांति सेना, छात्र युवा वाहिनी, आजादी बचाओ आंदोलन, किसान संघर्ष समिति, पीपुल यूनियन फॉर सिविल लेबोरेटरी, यूथ फॉर डेमोक्रेसी, जनतंत्र समाज, सर्व सेवा संघ, शिक्षा अधिकार मोर्चा, स्वराज अभियान, सर्वोदय समाज, इलाहाबाद सिविल सोसायटी।

प्रो. योगेन्द्र : क्या कारण है कि 1975 के बाद आज तक फिर कोई सम्पूर्ण क्रांति आंदोलन नहीं हो सका?

रामधीरज भाई : परिवर्तन समाज में हमेशा होता रहता है। 1975 में जो आंदोलन हुआ, वह इतिहास का एक ऐसा चक्र होगा, जिस अपेक्षा से आंदोलन होता है, सम्पूर्ण सफलता किसी आंदोलन में नहीं मिलती है, क्योंकि आंदोलन के समय जो अनापेक्षित घटनाएँ घटित होती हैं, उसके कारण आंदोलनकारियों में भी निराशा का दौर आता है। ऐसा नहीं कह सकते कि जयप्रकाश नारायण के बाद कोई आंदोलन नहीं हुआ। अन्ना आंदोलन उसका उदाहरण है। जब जनता एक आह्वान पर एकजुट हुई और तमात आतताई शक्तियों को झुकने के लिए विवश किया। इसके पहले भी आजादी बचाओ आंदोलन, भारत जन आंदोलन, नर्मदा बचाओ आंदोलन और तमाम ऐसे आंदोलन जो समाज के मानस को आये दिन लड़ाई के लिए तैयार करते रहते हैं। लेकिन जगह-जगह, छोटी-छोटी लड़ाइयाँ व्यापक बदलाव की भूमिका तैयार करती हैं, उसकी परिणिति सम्पूर्ण क्रांति आंदोलन या अन्ना आंदोलन है। अभी भी बदलाव की भूमिका और चाहत बरकरार है।

प्रो. योगेन्द्र : सम्पूर्ण क्रांति आंदोलन के दौरान ऐसी कौन-सी घटना घटी कि आंदोलन अपने चरम पर नहीं पहुँच सका?

रामधीरज भाई : हर आंदोलन के लिए घटना जिम्मेदार होती है। वह चाहे राम का काल रहा हो, कृष्ण का काल रहा हो या जयप्रकाश का काल रहा हो। आदमी और समाज को बदलने के लिए काफी होती है। उस घटना के बाद समाज को किस दिशा में जाना है, वह दिशा तय हो जाती है। ऐसे ही जयप्रकाश के समय जब आंदोलन शिखर की ओर बढ़

रहा था, इमरजेंसी का लग जाना, अचानक मोड़ आ जाना है। इसी प्रकार अन्ना आंदोलन के समय लड़ाई चरम पर पहुँच ही रही थी, उसका राजनीतिकरण कर देना, आंदोलन की धार को कुंद करना और सामाजिक समता को बिखेरने का कारण बना।

प्रो. योगेन्द्र : किसी नये आंदोलन का उद्भव और विकास कैसे होता है?

रामधीरज भाई : कई बार ऐसा होता है कि सामाजिक, राजनीतिक परिस्थितियाँ आंदोलन में ठहराव ला देती हैं। जिससे आंदोलन अपने लक्ष्य तक नहीं पहुँच पाता है। लेकिन कालान्तर में फिर यह शक्तियाँ संगठित होकर नये आंदोलन का कारण बनती हैं, जो 74 के आंदोलन में नौजवान थे, वे जीवन के उत्तरार्ध में हैं, वही लोग आज असली भूमिका में हैं। आज जो आंदोलन से निकल कर आये हैं, आक्रोश को संगठित कर गये हैं, वे ही आनेवाले समय में एक नये आंदोलन को अंजाम देंगे। जैसे पानी की धार चट्टानी अड़चनों से लड़ती हुई नदी मार्ग से समुद्र में पहुँचती है। वैसे ही नये आंदोलन भी अपने अंजाम तक जरूर पहुँचेंगे। चूँकि एक समाज और देश के जीवन में एक-दो दशक का समय बहुत छोटा होता है। लेकिन व्यक्ति के हिसाब से यह समय बहुत होता है। अतः यदि देश और समाज की दृष्टि से देखें, तो एक अंतराल के बाद समाज में बदलाव अवश्य आयेगा। आनेवाली पीढ़ियाँ उसका कारण बनेंगी। यह जीवन जीने की अनिवार्य शर्त है।

प्रो. योगेन्द्र : आपातकाल के दौरान जनता की मनःस्थिति कैसी थी?

रामधीरज भाई : आंदोलन की तकनीक और फरारी व इमरजेंसी में जहाँ एक ओर सामाजिक एवं राजनैतिक संगठनों और परिवारों के लोग डरे हुए थे, वहीं समाज के अलग-अलग तबकों में इसे लेकर बौखलाहट भी थी। उनका अप्रच्छन्न सहयोग भी प्राप्त हो रहा था और जैसे-जैसे आपातकाल की रातें गहराती थीं, वैसे-वैसे लोगों में आक्रोश घनीभूत हो रहा था।

प्रो. योगेन्द्र : भाई रामधीरज जी! सम्पूर्ण क्रांति के बारे में इतनी सूक्ष्म एवं सारगर्भित जानकारी देने के लिए आपको सादर धन्यवाद! ❑

समग्र क्रांति के लिए, बढ़े चलो, बढ़े चलो

समग्र-क्रांति के लिए, बढ़े चलो, बढ़े चलो।
चलो कि ऊँच-नीच, जाति-भेद का विनाश हो,
सभी को मिल सके खुशी, न कोई मन उदास हो।
समत्व-शांति के लिए, बढ़े चलो, बढ़े चलो,
समग्र-क्रांति के लिए, बढ़े चलो, बढ़े चलो।

विकास हो, मगर किसी का हक कभी छिने नहीं,
बँटे प्रकाश हर जगह, न अंधकार हो कहीं।
चलो कि लूट के खिलाफ, युद्ध तुम लड़े चलो,
समग्र-क्रांति के लिए, बढ़े चलो, बढ़े चलो।

थके, गिरे जो आज हैं, वो क्रांति-वीर बन सकें,
दमन की ताकतों के सामने, निडर जो तन सकें,
उन्हीं के वास्ते, नया समाज तुम गढ़े चलो।
समग्र-क्रांति के लिए, बढ़े चलो, बढ़े चलो।

हरे-भरे वनों का जिस तरह विनाश हो रहा,
अकाल-बाढ़ से उजाड़, हो रही वसुंधरा।
गगन में चिमनियाँ मिलों की, धुआँ उगल रहीं,
नदी को गंदी नालियाँ, जहर में हैं बदल रहीं।

गलत विकास की दिशा के सामने अड़े चलो।
समग्र-क्रांति के लिए, बढ़े चलो, बढ़े चलो।

❑

मेरा अध्यात्म!

"अध्यात्म के विषय में कुछ कहने का अधिकार मुझे तो नहीं है, फिर भी इतना कहूँगा कि यदि इसका अर्थ यह हो कि देश और जनता की वर्तमान समस्याओं के प्रति उदासीन रहा जाय, तो कम-से-कम मुझे अध्यात्म की यह परिभाषा मान्य नहीं है। मुझे तो ऐसा लगता है कि जनता की वर्तमान स्थिति को सुधारना, उनकी गरीबी और गुलामी को दूर करना ही हमारा प्रथम आध्यात्मिक कर्त्तव्य है।"

—जयप्रकाश नारायाण

आँवला के औषधीय गुण

❑ डॉ. योगेन्द्र यादव

भारत के सभी प्रदेशों में आँवला पाया जाता है। किन्तु कुछ क्षेत्रों में इसके बागान भी लगाये जाते हैं और उसके फल को आयुर्वेदिक कंपनियों को बेचा जाता है। इस फल की सबसे बड़ी विशेषता यह होती है कि यह ताजा हो, हरा हो, सूखा हो, इसके औषधीय गुण विनष्ट नहीं होते हैं। इसी कारण कम से कम भारत के लोगों द्वारा यह फल हर मौसम में किसी न किसी रूप में उपयोग लाया जाता है। यदि हम इसके औषधीय गुणों को जान लें, तो हम डॉक्टरों के पास जाने से बच सकते हैं। मैं यहाँ इस फल के औषधीय गुणों का वर्णन कर रहा हूँ—

तोतलापन के रोगी के लिए लाभदायक—जो बच्चे या व्यक्ति तुतलाते या हकलाते हैं, उनके लिए आँवला उपयोगी औषधी है। ऐसे रोगियों को नियमित रूप से आँवला चूसते रहना चाहिए। इसके अलावा शुद्ध शहद में एक चम्मच आँवले का चूर्ण मिलाकर सुबह-शाम खाना चाहिए। एक साल तक नियमित सेवन करने के बाद इस रोग से मुक्ति मिल जायेगी।

पेशाब में जलन में लाभदायक—जिन लोगों को पेशाब में जलन होती है, उनके लिए आँवला बहुत ही फायदेमंद है। उन्हें आधा कप आँवले का रस निकाल लेना चाहिए और उसमें दो चम्मच शहद मिलाकर उसके तीन भाग कर लें और दिन में तीन बार यानी सुबह-दोपहर-शाम उसका सेवन करें। इससे पेशाब करने से जो जलन होती है, उसमें आराम मिलेगा।

बालों के रोग में लाभदायक—बालों के जितने प्रकार के रोग होते हैं, उनके लिए आँवला रामबाण औषधी होती है। इसका नियमित सेवन करने से बाल काले रहते हैं। यदि बाल झड़ते हैं तो उनका गिरना रुक जाता है। इसके लिए आँवले के चूर्ण को शाम को मिट्टी के बर्तन में भिगों दें, फिर उसके पानी को सुबह बालों में लगायें। इससे बाल काले रहते हैं और उनका गिरना भी थम जाता है। यदि किसी के बाल सफेद हो गये हों तो वे मेंहदी में आँवला मिलाकर लगाये तो उसके बाल काले हो जाते हैं और कुदरती दीखते हैं।

बवासीर में लाभदायक—जिन्हें बवासीर की शिकायत है, उनके लिए आँवला का औषधीय रूप बहुत ही लाभ पहुँचाता है। बवासीर के रोगियों को महीन पीसा हुआ आँवले का चूर्ण एक-एक चम्मच दही में मिलाकर दिन में तीन बार लेना चाहिए, इससे उन्हें आराम मिलता है और कुछ ही दिनों में बवासीर ठीक हो जाती है।

आँखों की बीमारी में लाभदायक—आँखों की बीमारी में भी आँवला बहुत ही गुणकारी होता है। जिन व्यक्तियों को आँख के रोग की शिकायत हो, उन्हें हर शाम एक कटोरी में आँवला भिगो देना चाहिए। फिर उसे सुबह बहुत ही महीन कपड़े से छान लेना चाहिए। इसके बाद उस पानी से दिन में तीन बार आँखों को धोना चाहिए। इससे आँखों का धुँधलापन दूर हो जाता है और दृष्टि साफ हो जाती है। हर चीज साफ दिखाई देने लगती है। यह निकट एवं दूरदृष्टि दोष दोनों में लाभकारी है।

स्वप्नदोष की बीमारी में लाभदायक—जिन युवकों को स्वप्नदोष होता है, यदि वे नियमित रूप से आँवले का सेवन करते हैं, तो उनकी यह बीमारी ठीक हो जाती है। ऐसे रोगियों के लिए आँवले का मुरब्बा खाना खाने के बाद सुबह-शाम लेना चाहिए।

कमजोरी दूर करने में सहायक—जिन व्यक्तियों में शारीरिक दुर्बलता हो, उनके लिए भी आँवला राम बाण औषधी है। कमजोर व्यक्तियों को ताजे आँवले का दो चम्मच रस आधा कप शहद में मिलाकर सुबह शाम लें एवं बाद में एक गिलास दूध पीयें तो तुरंत शक्ति प्राप्ति होने का एहसास होता है।

इसके अलावा और भी छोटी-मोटी बीमारियों में यह लाभ देती है, इसलिए प्रत्येक गृहस्थ, विद्यार्थी को आँवले का किसी न किसी रूप में सेवन करते रहना चाहिए। ❑

कहते हैं उसको जयप्रकाश!

स्वागत है, आओ, काल-सर्प के,
फण पर चढ़ चलनेवाले
स्वागत है, आओ, हवन-कुड में,
कूद स्वयं जलनेवाले।

मुट्ठी में लिए भविष्य देश का,
वाणी में हुकार लिये,
मन से उतरकर हाथों में,
निज स्वप्नों का संसार लिये।

सेनानी करो प्रयाण अभय,
भावी इतिहास तुम्हारा है,
ये नखत अमां के बुझते हैं,
सारा आकाश तुम्हारा है।

जो कुछ थे निर्गुण, निराकार,
तुम इस द्युति के आकार हुए,
पीकर जो आग पचा डाली,
तुम स्वयं एक अंगार हुए।

—दिनकर

धर्मांधता व भोगवाद–आज बड़ी चुनौती

❑ ज्ञानेन्द्र

मानव समाज अनवरत उन्नति के लक्ष्य के साथ आगे बढ़ रहा है। देश ने ब्रिटिश गुलामी से मुक्ति के बाद आगामी व्यवस्था के लिए लोकतंत्र का चयन कर लिया, जिसका संविधान 26 जनवरी 1950 से लागू हो गया। परिणामतः धर्म व राजतंत्र के प्रभुत्व का कानूनी तौर पर अन्त हो गया। धर्म के संगठित अस्तित्व को संवैधानिक मान्यता नहीं है। धार्मिक स्वतंत्रता का हकदार प्रत्येक नागरिक है न कि धर्म व जाति समूह। इसका विचार अभिव्यक्ति, व्यवसाय, जीवन जीने की स्वतंत्रता के साथ ही प्रत्येक नागरिक को संविधान प्रदत्त मूल अधिकार के रूप में प्राप्त है। लोकतंत्र में व्यक्तिगत स्वतंत्रता बुनियादी हक है जो छीना नहीं जा सकता, कानून के द्वारा भी समाप्त नहीं किया जा सकता।

धर्म-व्यवस्था लोकतंत्र आने से पहले दुनिया के सभी देशों में रही है पर इसमें व्यक्तिगत स्वतंत्रता के लिए स्थान नहीं था। इसका मूल था केन्द्रित वर्चस्व। कुटुम्ब प्रमुख का, उच्च जाति का केन्द्रित सत्ता का वर्चस्व, इसके प्रमुख घटक रहे हैं। राजतंत्रीय व्यवस्था से मेल खाने के कारण उस व्यवस्था में तो ये टिके रहे, पर दुनिया के प्रमुख देशों में राजतंत्र व्यवस्था कमजोर होते जाने व व्यक्तिगत स्वतंत्रता के मूल्य सबल होते जाने से धर्मवाद सतत कमजोर व समाप्त हुआ। जिन देशों में लोकतंत्र आया ही नहीं या कमजोर है, वहाँ स्थिति भिन्न है। भारत व एशिया महादीप में व्यक्तिगत स्वतंत्रता व लोकतंत्र का विकास देर से शुरू हुआ, यहाँ मजबूत लोकतंत्र देर से आयेगा, पर यहाँ भी लोकतंत्र के क्रमबद्ध विकास के साथ केन्द्रित वर्चस्ववाद की समाप्ति अनिवार्य है। धर्मवाद व राजतंत्र दोनों वर्चस्ववादी समाज व्यवस्था में ही बचेंगे, आदर्श लोकतंत्र में नहीं। भारत में लोकतंत्र का विकास अपूर्ण रहने के कारण प्राचीन व्यवस्था की मानसिकता व मानवतावादी व्यवस्था के बीच संघर्ष थम नहीं रहा है।

5 जून सम्पूर्ण क्रांति दिन है। इसका आधुनिक संदर्भ 1973-74 में जयप्रकाश नारायण के नेतृत्व में छात्र के लोकतांत्रिक व आर्थिक अधिकारों को कम करते हुए लोकतंत्र के ढाँचे को राजतंत्रीय ढाँचे में बदलने की कोशिश हुई थी। इसके खिलाफ देश में बड़ा जनआंदोलन शुरू हुआ। इसका नेतृत्व करते हुए जयप्रकाश ने कहा कि मात्र सत्ता परिवर्तन नहीं, बल्कि व्यवस्था परिवर्तन के लिए लड़ना होगा। सभी क्षेत्रों में आमूल परिवर्तन व सतत परिवर्तन होगा। परिवर्तन से डरकर तत्कालीन सत्ता ने आपातकाल (इमरजेंसी) लागू किया पर लोकतंत्र की धारा प्रबल हुई व विजयी हुई। इसके साथ ही कांग्रेस का एकपक्षीय केन्द्रित वर्चस्व टूटना शुरू हुआ व आज समाप्त व प्रभावहीन हो गया।

सम्पूर्ण क्रांति के संदर्भ में आज दो खतरों को प्रमुखता से लेना होगा। जिनमें से पहला है कि संयुक्त परिवार व समाज की टूट की जगह नई सामूहिकता व समाजहित शकल नहीं ले सकी, परिणामतः व्यक्तिवाद, भौतिकवाद, भोगवाद की व्यवस्था स्थापित हुई, इसलिए समाज चुनौतियों के खिलाफ खड़े रहने का नैतिक बल खोता जा रहा है।

दूसरा खतरा है धर्मान्धता व हिंसा का। सत्ता खुलकर धर्मवाद के समर्थन में खड़ी है। उससे जुड़े संघवादी संगठन समाज में उच्च जाति व धर्मवाद के वर्चस्व बनाने के अलग-अलग नुस्खे चला रहे हैं। सरकार देश को कारपोरेट कब्जे में देती जा रही है। दुनिया में धर्म व महजब के नाम पर हिंसा का समर्थन व संगठित हिंसा का परिचालन हो रहा है। मालेगाँव बम ब्लास्ट के आरोपियों को छोड़ा जाना व गोडसे व सावरकर को नये सिरे से पेश करने व स्थापित करने की कोशिशें बीमारी के बाहरी लक्षण मात्र हैं। निकट भविष्य में धर्म के नाम पर हिंसा व जातीय हिंसा का खतरा बढ़ा है। इसलिए अहिंसा व मानवता के प्रबल वाहक गांधी तथा लोकतंत्र व संविधान के महान नायक डॉ॰ भीमराव अम्बेडकर के समर्थकों को हिंसा व धर्मांधता का सामना करने के लिए एकजुट होना जरूरी है। उसी तरह सर्वोदय परिवार, 1974 आंदोलन से जुड़ा संघर्ष वाहिनी परिवार, संघर्षरत विभिन्न समाजवादी संगठन, धर्मनिरपेक्षता, लोकतंत्र, मानवता व पर्यावरण के लिए काम करनेवाले समूहों की एकजुटता जरूरी है। सम्पूर्ण क्रांति सतत क्रांति है और समाज, समय की चुनौती के अनुरूप आत्मपरिवर्तन के द्वारा सम्पर्क, संघर्ष व सत्याग्रह को पुनर्संगठित करना पड़ेगा। ❑

भारतमाता का मंगलकारी पुत्र

जयप्रकाश कोई साधारण कार्यकर्ता नहीं हैं। समाजवाद के तो वे एक प्रमाणभूत पष्ठि माने जाते हैं। उनके बारे में यह भी कहा जा सकता है कि समाजवाद के विषय में जयप्रकाश जो नहीं जानते उसे इस देश में दूसरा कोई नहीं जानता। उन्होंने देश की स्वतंत्रता के लिए अपना सर्वसमर्पित किया है।वे जिस काम की जिम्मेदारी उठाते हैं, अथक परिश्रम के साथ उसे परिपूर्ण करने में वे किसी बात की कमी नहीं रहने देते। उनकी सहनशक्ति का तो कोई जोड़ा ही नहीं।

—गांधी

सम्पूर्ण क्रांति का संदेश

❑ जयप्रकाश नारायण

मैं आपको याद दिलाना चाहता हूँ कि हमारी लड़ाई लम्बी है। स्वराज्य का जो नक्शा गांधीजी ने हमारे सामने खींचा था उसे धरती पर उतारना और स्वराज्य का सुख घर-घर पहुँचाना अभी बाकी है। आजादी के बाद जो सरकारें जनता के वोट से बनीं, वे इस काम को आगे बढ़ायेंगी, ऐसी आशा थी, लेकिन उन्होंने जनता के साथ दगा किया। जिन्हें हमने अपना प्रतिनिधि बनाकर भेजा, वे अपना ही स्वार्थ साधने में लगे रहे। इतना ही नहीं, वे हर तरह की अनीति और अन्याय का समर्थन भी करते रहे। हमारी सरकारें पूरे तौर पर जन-विरोधी बन गयीं।

ऐसी हालत में अब एक ही उपाय रह गया है। जनता को अपने हितों और अधिकारों की लड़ाई खुद लड़नी पड़ेगी। जब सरकार जन-विरोधी हो जाती है तो उसे शांतिपूर्ण, लोकतांत्रिक उपायों से हटाना जनता का जन्म-सिद्ध अधिकार है। अधिकार ही नहीं, कर्त्तव्य भी है। क्योंकि गलत सरकार कीड़े की तरह भीतर-भीतर जनजीवन को खा जाती है और जनता को हर दृष्टि से कमजोर और असहाय बना देती है।

हमें सरकार और समाज दोनों को बदलना है। दोनों बदले बिना ऐसी व्यवस्था नहीं कायम हो सकेगी जिसमें हर व्यक्ति को ईमान की रोटी और इज्जत की जिन्दगी मयस्सर हो सके।

सम्पूर्ण क्रांति का मेरा मतलब

भ्रष्टाचार, बेरोजगारी, महँगाई, कुशिक्षा, भ्रष्ट चुनाव आदि सवाल तभी हल होंगे जब आज की सरकार और आज के समाज का भ्रष्ट और निकम्मा ढाँचा बुनियादी तौर पर बदल जायेगा। हमें प्रशासन, चुनाव की पद्धति, विकास की नीति-रीति, बाजार की खरीद-बिक्री, शिक्षा आदि सबमें परिवर्तन करना है ताकि जीविका के साधन और विकास के अवसर गरीब से गरीब व्यक्ति तक पहुँचे। इसीलिए मैंने बार-बार सम्पूर्ण क्रांति की बात कही है। आप इस बात को अच्छी तरह समझ लें।

हमें लड़ाई सम्पूर्ण क्रांति की लड़नी है। इतनी बड़ी और व्यापक लड़ाई का मोरचा सिर्फ पटना या दिल्ली में नहीं है, बल्कि गाँव-गाँव और शहर-शहर में है, हर बाजार और कार्यालय में है, हर विद्यालय और कारखाने में है। जहाँ अन्याय और अनीति है, वहाँ हमारा संघर्ष है।

ज्यादा समय नहीं लगना चाहिए

आप यह न समझें कि इस तरह के चौमुखी परिवर्तन में सौ-पचास साल लगेंगे। देश इस समय जिस स्थिति में पहुँच गया है उससे निकलने में देर नहीं लगेगी, बशर्ते जनता हिम्मत करके उठ खड़ी हो और संगठित होकर चल पड़े। आज जितना कष्ट है और भविष्य में जितना अंधकारमय है उसके कारण जन-जन में असंतोष है और सभी निकलने का रास्ता ढूँढ रहे हैं। जब निहत्थी जनता संगठित हो जाती है तो बहुत दिनों तक लाठी-गोली से उसे दबाया नहीं जा सकता। कोई भी सरकार हो, अंत में वह अपनी जनता से नहीं जीत सकती, जनता की शक्ति अजेय होती है।

जनता खुद सरकार है

जनता यह मानकर काम शुरू करे कि वह खुद सरकार है। संगठन बनाकर वह अपना अधिक काम अपने हाथ में ले सकती है और सरकार को अपने दैनन्दिन जीवन में हस्तक्षेप करने से रोक सकती है।

मैं चाहता हूँ कि मेरा यह सन्देश हर गाँव और शहर में पहुँचे। मुझे पूरी आशा है कि सभी साथी इस काम में अपनी पूरी शक्ति लगायेंगे। ❑

लोकसेवकों का नवीनीकरण

लोकसेवकों का नवीनीकरण के लिए 1 अप्रैल से 30 जून की तारीख निर्धारित है। कार्यसमिति के निर्णयानुसार इस वर्ष सभी लोकसेवकों को नये सिरेसे निष्ठा-पत्र भरना होगा। इस संबंध में सभी जिला एवं प्रदेश सर्वोदय मंडलों को प्रधान कार्यालय से परिपत्र भेजे गये हैं। यह परिपत्र सर्वोदय जगत (वर्ष 39, अंक 17, 16-30 अप्रैल, 2016) में पृष्ठ 8 पर प्रकाशित हुआ है।

सभी लोकसेवकों से निवेदन है कि 30 जून तक अपनी सदस्यता का नवीनीकरण करा लें।

सर्वोदय मित्रों के लिए भी यह अवधि निर्धारित है।

–शेख हुसेन
महामंत्री, सर्व सेवा संघ

निमंत्रण

प्रिय मित्र,

हर वर्ष जब जून का महीना आता है, सहज ही इसकी दो तारीखों का स्मरण होता है—5 जून 1974 को इसी दिन लोकनायक जयप्रकाश ने पटना के गांधी मैदान से सम्पूर्ण क्रांति का उद्घोष करते हुए कहा था कि हमारे आंदोलन का लक्ष्य व्यवस्था परिवर्तन करना है—ऊँच-नीच, जाति-पाँति, तिलक-दहेज, शिक्षा में परिवर्तन, राजनीतिक व्यवस्था में परिवर्तन, व्यवस्था परिवर्तन, मूल्यों में परिवर्तन आदि बातें उन्होंने गिनायी थीं। आगे उन्होंने कहा था, सत्ता-परिवर्तन हमारा अल्पकालीन लक्ष्य है। 25 जून 1975, इसी दिन लोकतंत्र का गला घोंटते हुए आपातकाल की घोषणा कर दी थी। आप-हम और हजारों लोगों को जेल के सलाखों में बंद कर दिया गया था। सारे नागरिक अधिकार खत्म कर दिये गये थे।

सन् 1974-75 को 42 वर्ष हो रहे हैं। यदि हम इन वर्षों का सिंहावलोकन करेंगे तो देखेंगे कि परिस्थिति और भी भयावह हो गयी है। पूरा देश दलों के दलदल में बुरी तरह फँस गया है। लगता है क्षत्रपों ने पूरे देश को अपने-अपने सूबों में बाँट लिया है। मतदाताओं को तो मात्र वोट देने का यंत्र मान लिया गया है। जाति, व्यवस्था, धर्मान्धता, आर्थिक विषमता आदि बढ़ती ही जा रही है।

देश में अघोषित आपातकाल लागू हो गया है। सरकार के विरूद्ध बोलनेवाले हरएक को राष्ट्रद्रोही मानकर उन्हें हर तरह से प्रताड़ित किया जा रहा है। ऐसा लगता है कि सत्ताधारी पार्टी की राय से भिन्न राय रखना अपराध हो गया है।

तो क्या हम इसे यूँ ही चुपचाप देखते एवं सहते रहेंगे? 1974 का नारा—'सच कहना अगर बगावत है तो समझो हम भी बागी हैं' को हमें दुहराना ही होगा।

इस पृष्ठभूमि में सम्पूर्ण क्रांति आंदोलन के नये-नये साथियों एवं परिवर्तन की आकांक्षा से कार्यरत विभिन्न मित्रों की एक बैठक निम्न विवरण के अनुसार आयोजित की गयी है—

तारीख : 30 जुलाई 2016 (शनिवार)

स्थान : सर्व सेवा संघ, राजघाट, वाराणसी-221001 (जी.टी. रोड, बसंत कॉलेज मोड़)

फोन : 0542-24403385, 2440223

बैठक 30 जुलाई को प्रातः 10 बजे शुरू होगी और 31 जुलाई को दोपहर तक चलेगी। अतः अपना कार्यक्रम इसी अनुसार बनायें।

इस पत्र को अधिक-से-अधिक मित्रों तक पहुँचाने का कष्ट करें। आपके संपर्क के मित्रों के नाम-पते, ई-मेल वगैरह भेजेंगे तो हम उन्हें निमंत्रण भेज सकेंगे।

आप कब पहुँच रहे हैं इसकी जानकारी अवश्य देंगे ताकि तद्नुसार व्यवस्था की जा सके।

क्रांतिकारी अभिवादनों के साथ—

हम हैं

महादेव विद्रोही
अध्यक्ष, स.से.सं.

भवानी शंकर कुसुम
संयोजक, सम्पूर्ण क्रांति राष्ट्रीयमंच

टी.आर.एन. प्रभु
प्रबंधक ट्रस्टी, स.से.सं.

शेख हुसैन
महामंत्री, स.से.सं.

रामशरण

रामदत्त त्रिपाठी

घनश्याम

रामधीरज

अरविंद अंजुम
संयोजक, स.से.सं. प्रकाशन

शिवविजय सिंह
संयोजक, राजघाट परिसर

नोट–इस बैठक में शामिल होनेवाले साथी 'सर्व सेवा संघ', प्रधान कार्यालय, महादेव भाई भवन, सेवाग्राम-442102, जिला-वर्धा (महाराष्ट) फोनः 07152-284061, 284091 के पते पर तथा श्री महादेव विद्रोही अध्यक्ष सर्व सेवा संघ के मोबाइल नम्बर 9428825908 पर सम्पर्क कर अपनी उपस्थिति सुनिश्चित करने की कृपा करेंगे, ताकि व्यवस्था करने में सुविधा होगी।

सर्व सेवा संघ (स्वत्वाधिकारी) के लिए महामंत्री, शेख हुसैन द्वारा सर्व सेवा संघ परिसर, राजघाट, वाराणसी (उ.प्र.) 221001 से प्रकाशित तथा सुरभि प्रिन्टर्स, इंडियन प्रेस कॉलोनी, मलदहिया, वाराणसी से मुद्रित। संपादक : बिमल कुमार। छपी प्रतियाँ : 1450